सहजानंद शास्त्रमाला

परीक्षामुखसूत्र प्रवचन

भाग-7

रचयिता

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री

पूज्य श्री क्षु० मनोहरजी वर्णी ''सहजानन्द'' महाराज

प्रकाशक

श्री सहजानंद शास्त्रमाला, मेरठ

एवं

श्री माणकचंद हीरालाल दिगम्बर जैन पारमार्थिक न्यास

गांधीनगर, इन्दौर

Online Version : 001

http://sahjanandvarnishastra.org/

सहजानन्द शास्त्रमाला

परीक्षामुख सूत्र प्रवचन

(५, ६, ७ भाग)

प्रवक्ता :—
अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक
श्री मनोहर जी वर्णी "सहजानन्द" महाराज

प्रबन्ध सम्पादक :—
बैजनाथ जैन,
सदस्य स० शा०
यादगार बड़तला, सहारनपुर

प्रकाशक :—
खेमचन्द जैन सर्राफ
मंत्री सहजानन्द शास्त्रमाला
१८५ ए रणजीतपुरी सदर मेरठ

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

परीक्षामुखसूत्रप्रवचन

[सप्तम भाग]

[प्रवक्ता—अध्यात्मयोगी पूज्य श्री १०५ क्षु० मनोहर जी वर्णी "सहजानन्द" महाराज]

●

प्रामाण्यकी उत्पत्तिविधिकी जिज्ञासा— प्रमाणके स्वरूपका निर्णय तो किया जा चुका है, जो स्वयंका और अपूर्व अर्थका निश्चय कराये ऐसा ज्ञान प्रमाण होता है, अब उस प्रमाणकी प्रमाणताके सम्बन्धमें निर्णय किया जा रहा है कि प्रमाण की प्रमाणता स्वयं अपने आप हो जाती है या परसे हुआ करती है अर्थात् यह ज्ञान बिल्कुल ठीक है जिसे जाना है, जो पदार्थ है उस पदार्थके अनुरूप ही यह ज्ञान है इस प्रकार ज्ञानकी प्रमाणता करना, यह स्वतः होता है अर्थात वही ज्ञान निर्णय बना लेता है या अन्य ज्ञानसे प्रमाणता होती है, इस सम्बन्धमें आचार्यदेव सिद्धान्त रख रहे हैं—

तत्प्रामाण्यं स्वतः परतश्च ॥ १३ ॥

प्रामाण्यकी उत्पत्तिविधिका निर्णय— जो पहिले प्रमाणका लक्षण कहा गया, स्वपर व्यवसायी ज्ञानप्रमाण है उस ज्ञानरूप प्रमाणकी प्रमाणता स्वतः भी होती है और परसे भी होती है,इस प्रसंगमें दो बातें समझना है एक तो प्रमाणमें प्रमाणताकी उत्पत्ति होना और एक प्रमाणमें सही जानकारी होना और ऐसी जानकारी बनना जिस जानकारीके कारण यदि पदार्थोंमें लगता है तो लग सकें और हटना है तो हट सकें। इनमेंसे प्रमाण की उत्पत्ति तो परतः होती है, पर प्रमाणमें ऐसी जानकारी जो प्रवृत्ति और निवृत्तिका कारण बने वह कहीं स्वतः होती है और कहीं परसे होती है।

अभ्यास दशामें प्रामाण्यकी उत्पत्तिविधि— देखो भैया ! जिस गर्ल में से रोज गुजरते हैं दूसरे गाँवको जानेके लिए उस रास्तेमें लगी प्यास तो चलते चलते जो पानीका ठिकाना है, जहां कुवां है, नदी है तालाब है अथवा हैण्डपाइप है उसके निकट पहुँचकर झट जान लेते हैं कि यह है जलाशय। यह है पानी। ऐसा जो ज्ञान बना उस ज्ञानमें किसी पर युक्तिकी प्रमाणकी जरूरत नहीं पड़ी। क्योंकि रोज वहांसे निकलते थे, अभ्यास था, जानकारी पक्की हो गयी कि यह है पानी अथवा न भी रोज निकलते थे किसी अनजान रास्टेसे जा रहे हों और सड़कके निकट ही पानी भरा दीखा तालाब दीखा तो झट जान गए कि यह पानी है। तो यह जो पानीका

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ज्ञान हुआ यह स्वतः हुआ और जानकर झट उस ओर चल दिया, प्रवृत्ति भी हो गयी, तो वह प्रमाणता स्वतः हुई है। अथवा रास्ता चलते एक बिच्छू नजर आया, बिच्छू नजर आते ही जान गए कि यह बिच्छू है, तो इस प्रकारके ज्ञानमें जो प्रमाणता आयी, पक्कायत आयी हाँ है, मेरा ज्ञान ठीक है, इस प्रकार ज्ञानमें जो पक्कायत हुई है वह स्वतः हुई है ये अभ्यास-दशाकी नजीरें हैं। अभ्यास-दशामें प्रमाणकी यह प्रमाणता स्वतः हुआ करती है।

अनभ्यास दशामें प्रामाण्यकी उत्पत्तिविधि अब अनभ्यास दशाकी बात देखो—किसी मार्गसे चले जा रहे हैं, प्यास लगी है, पानीकी खोज कर रहे हैं, किस जगह पानी है ? कहीं थोड़ी सी एक ओरसे मेंढकोंको आवाज आयी तो हम सोचते हैं अनुमान लगाते हैं कि पानी इस ओर होगा क्योंकि मेढकोंकी आवाज आ रही है। जरा उस ओर दृष्टि दिया थोड़ा चले कि रास्तेमें दो एक जगह टूटी फूटी खपरिया पड़ी थीं। उनसे कुछ निर्णय हुआ कि यहां पानी होना चाहिए। फिर थोड़ा चले कि कुछ लोग पानी भरकर आते हुए दिखे अब यह निर्णय हो गया कि यहाँ पानी जरूर होना चाहिए। बादमें पानी भी दिख गया। तो यह पानीमें ज्ञान हुआ और उसमें प्रमाणता आयी कि हाँ यह पानी है। यह प्रमाणता कितनी देर बाद आयी ? और, अन्य अन्य साधनोंको निरखकर आयी क्योंकि यह अनभ्यास दशा थी, परिचय न था, अपरिचित जगह थी, अपरिचित अवस्थामें प्रमाणकी प्रमाणता परसे उत्पन्न होती है।

प्रामाण्यकी उत्पत्ति और ज्ञप्तिका विश्लेषण – प्रामाण्यके सम्बन्धमें यह सिद्धान्त बना कि ज्ञानसे जो कुछ जाना उसकी प्रमाणता पक्कायत, हाँ यही ठीक है, मेरा ज्ञान सही है, इस प्रकारकी प्रमाणता होना अभ्यास दशामें तो खुद-बखुद है और अनभ्यास दशामें, अपरिचयकी जगहमें परसे हुआ करती है। लेकिन, भीतर जो किसी ज्ञानको, यह प्रमाण है, क्या ऐसी उसकी प्रमाणता ठीक करनेके लिए जो वृत्ति जगती है वह एक भिन्न ज्ञान है याने अन्य ज्ञानसे प्रमाणता बनी अथवा चक्षु आदिक इन्द्रिय निर्दोष हैं उन परसे उत्पन्न हुई है। इस प्रसङ्गमें यह बताया जा रहा कि ज्ञान जानता है, पर ज्ञान ठीक जान रहा है उसकी प्रमाणता जिस निमित्तसे ज्ञान होता है उस परसे उत्पन्न होती है, मगर ज्ञप्तिकी क्रियामें जाननकार्यमें और जाननका फल है अनिष्टसे हट जाना, इष्ट पदार्थमें लग जाना, इस प्रकारकी प्रवृत्ति और इन्द्रियके अर्थ होने वाला ज्ञान ये परिचयकी स्थितिमें स्वतः होते हैं और अपरिचयकी स्थितिमें परतः होते हैं।

सर्वथा स्वतः प्रामाण्य मानने वालोंके प्रति विकल्प—कुछ लोग सभी प्रमाणोंका प्रामाण्य स्वतः मानते हैं याने प्रमाणमें प्रमाणता स्वयं अपने आप बन जाती है। उनसे यह पूछना चाहिए कि प्रमाणकी प्रमाणता स्वतः होती है। इसका तात्पर्य है क्या ? क्या प्रामाण्यकी उत्पत्ति स्वतः होती है अथवा प्रमाणकी ज्ञप्तिमें प्रमाणता स्वतः होती है अथवा प्रमाणका जो स्व कार्य है प्रवृत्ति रूप क्या उसमें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

प्रमाणता स्वत: होती है ? ये तीन विकल्प किए गए। देखिये यह विषय किसी जमानेमें बहुत चर्चाका था जब एक दार्शनिक युग था। जिस समय दर्शनके सिद्धान्त के मत-मतान्तरकी चर्चा आपसमें बहुत की जाती थी। उस जमानेके एक कवि द्वारा बताई गई घटना सुनिये—एक बार कोई पुरुष बड़ा विद्वान मण्डन मिश्र नामका किसी विद्वानसे शास्त्रार्थ करनेके लिये चला। मण्डन मिश्रके गांवमें पहुंचा। उस जमानेमें शास्त्रार्थका बड़ा जोर था, वस्तु स्वरूपके सम्बन्धमें धर्म, चर्चाके प्रसङ्गमें जगह जगह चर्चायें चलती थी। विद्वानोंका बड़ा प्रचार था और विद्वानोंमें यह उत्सुकता रहती थी कि मैं किसी विषयपर चर्चा करूँ और उस विद्वानकी बातका खण्डन करूँ, अपनी बातका समर्थन करूँ, ऐसे युगकी बात कह रहे हैं। वह विद्वान मण्डन मिश्रके ग्राममें तो पहुँच गया पर मण्डन मिश्रका घर कौन है यह न जान सका। तो रास्तेमें एक कुएपर कुछ महिलायें पानी भर रही थी। उस पुरुषके प्यास लगी थी सो उस कुवेंपर पहुँचा, महिलावोंसे कहा कि हमें पानी पिला दो। महिलावोंने पानी पिला दिया। अब वह पुरुष उन महिलावोंसे पूछता है कि मण्डन मिश्रका घर कौन सा है ? तो एक महिला जवाब देती है —

स्वत: प्रमाणं परत: प्रमाणं कीराङ्गना यत्र गिरो गिरन्ति।
शिष्योपशिष्यैरुपगीयमानमवेहि तन्मण्डलमिश्रधाम ।

उस जमानेमें स्त्रियां भी संस्कृतकी बड़ी विदुषी होती थी। स्त्री जवाब देती है कि जिस दरवाजेपर तोतोंकी स्त्रियां यह बोल रही हों कि स्वत: प्रामाण्य होता है परता प्रामाण्य होता है, और जिस दरवाजेपर शिष्य और उपशिष्य सिद्धान्तकी चर्चा कर रहे हों वह है मण्डन मिश्रका घर। यह बता दिया स्त्रीने। इस प्रसङ्गमें जानने योग्य बात क्या कही कि इतनी चर्चा थी इस विषयकी कि प्रमाणकी प्रमाणता स्वत: होती है या परसे होती है इस चर्चाको सुन सुनकर तोतियां भी यह गाना गाने लगी थी। तोते तो दोहा तक भी बोल लेते हैं एक तोता है 'चित्रकूटके घाटपर, भई संतनकी भीर। तुलसिदास चन्दन घिसै, तिलक देत रघुबीर' यह दोहा तोता भी बोल लेता है और बल्कि इसी तरह जैसे मनुष्य बोल लेते हैं और बातें भी बोल लेते हैं। तो उस समय स्वत: प्रमाण है, परत: प्रमाण है इसकी इतनी अधिक चर्चा चलती थी कि तोतोंकी तो बात क्या तोतियां भी यही बोलने लगी थी। वही विषय चल रहा है। जो चाहे आज सुननेमें नवीनसा लगता है, कठिनसा लगता है पर यह कितनी चर्चाका विषय था यह बतानेके लिये घटना सुनायी है।

स्वत: प्रामाण्यके पक्षमें प्रश्न—ज्ञान प्रमाण होता है सभी लोग कहते हैं और अप्रमाण भी होता है। जिसे एक अपनी भाषामें यों कह देते कि तुम्हारा ज्ञान ठीक है और सैद्धान्तिक भाषामें यों कहते हैं कि आपका ज्ञान प्रमाणभूत है। कभी कहते हैं कि आपका ज्ञान ठीक नहीं है। उसे कहना चाहिए सैद्धान्तिक भाषामें कि आपका

http://sahjanandvarnishastra.org/

ज्ञान अप्रमाण है। ज्ञानकी यह प्रमाणता, उसे सही करार करना यह स्वतः होता है या परसे उत्पन्न होता है यह पूछा जा रहा है। सिद्धान्त यह है कि प्रमाणताकी उत्पत्ति तो परसे होती है, मगर उस प्रमाणमें जो जानकारी होती है, स्वसे सम्बन्धित जो प्रकाश होता है जिससे यह मनुष्य इष्टमें लग जाता है, अनिष्टसे हट जाता है, वह प्रमाणता अभ्यास दशामें तो स्वतः होती है और अनभ्यास दशामें परतः होती है। इसके विरोधमें जो लोग प्रमाणकी प्रमाणताको स्वतः मानते हैं उनसे पूछा जा रहा है क्या प्रमाणकी प्रमाणता उत्पत्तिमें स्वतः है या जानकारीमें स्वतः है या प्रवृत्ति निवृत्ति कर सके ऐसे विवेकमें स्वतः है।

स्वतः प्रामाण्यके पक्षका प्रतिविधान—यदि कहो कि प्रामाण्य उत्पत्तिमें स्वतः होता है तो स्वतः प्रामाण्य उत्पन्न होता है इसका अर्थ क्या है ? क्या अन्य कारणोंके बिना आत्मासे ही स्वतः हो जाती है वह प्रामाण्यकी उत्पत्ति अथवा अपने आपके उसी ज्ञानसे जिस ज्ञानसे ज्ञान हुआ है उस हीसे प्रामाण्यकी उत्पत्ति हो जाती है अथवा केवल ज्ञानमात्रसे अपनी ही सामग्रीसे स्वरूपसे उसकी उत्पत्ति हो जाती है। यदि कहो कि आत्मा हीसे प्रमाणकी प्रमाणता उत्पन्न हो जाती है तो फिर उसमें देश कालका नियम नहीं बना। मैंने चौकीका ज्ञान किया और यह ज्ञान प्रमाण है, यह अलग-अलग नहीं कह सकते। क्योंकि प्रमाणता तो आत्मासे मानने लगे, वहींसे उत्पन्न होता और आत्मा है नित्य सर्वव्यापक तो सर्व ज्ञान प्रमाण हो जाना चाहिए। फिर यह नहीं कह सकते कि यह ज्ञान तो प्रमाण है और यह ज्ञान अप्रमाण है। देखिये ! हम किसी चीजको जानते हैं, जानते ही हमें ज्ञान हुआ है। यह ज्ञान है उससे जान रहे हैं, यह बात तो तुरन्त भानमें आती है, चाहे हम इन शब्दोंमें बोलें या न बोलें इस विधिका नाम तो है प्रत्यक्ष। ज्ञान प्रत्यक्ष हो गया। ज्ञान मुझमें ही हुआ ना, तो मेरेसे गुजरा ज्ञान। मेरेसे हटकर अलग होकर मेरे अनुभव बिना मेरी गैर जानकारीमें कोई सा ज्ञान उत्पन्न नहीं होता। यह तो सिद्धान्त इससे पहिले सूत्रमें आया था। अब यहाँ इस बातको कह रहे हैं कि यह ज्ञान मेरा सही है। इस प्रकार प्रामाण्य निर्णयका निर्णय करना, इस प्रमाणताकी उत्पत्ति निर्दोष गुणवान साधनरूप इन्द्रियादिक परसे होती है।

स्वतः व परतः प्रामाण्यका विवेक—पहिले एक दार्शनिकने यह सिद्धान्त रखा था कि ज्ञान ज्ञानान्तरके द्वारा जाना जाता है। उसका तो निराकरण किया था कि नहीं, ज्ञान स्वयंको जानता है, पर यहाँ उस प्रमाणताकी उत्पत्तिकी बात कह रहे हैं। यद्यपि केवल जाननरूपमें स्वतः प्रमाणता बन जाती है किन्तु जब उसे समझाने बैठें अथवा अपने आपमें उसका विश्लेषण करने बैठें तो उस ज्ञानकी प्रमाणता अन्यसे करणसे होती है उत्पत्तिकी अपेक्षा। लौकिक जनोंमें प्रमाणता कभी अभ्यास दशामें स्वतः होती है और अनभ्यास दशामें परतः होती है। जो ग्रन्थ आप कई बार पढ़ चुके

Report any errors at vikasnd@gmail.com

हैं और विधि सहित पढ़ चुके हैं उस ग्रन्थके बाँचनेमें, पढ़नेमें, समझनेमें आपको कठिनाई तो नहीं पड़ती। वह अभ्यासकी चीज बनी है, वह परिचयकी बात हो गयी है और जो परिचित ग्रन्थ नहीं है, बिल्कुल नवीन आया है उसके बाँचनेमें, समझनेमें कुछ थोड़ा चित्त ज्यादा लगाना पड़ता है, समझबुद्धि अधिक लगानी पड़ती है और अन्य अन्य चिन्तनसे. स्मरणसे उसका अर्थ और मर्म जाना जाता है। तो जो अभ्यास वाली चीज है उसमें ज्ञप्ति स्वतः होती है और ऐसी जानकारी होती कि लगना हो तो झट लग जाय, न लगना हो तो झट हट जाय।

स्वतः परतः प्रामाण्यका एक लौकिक उदाहरण—अभ्यास व अनभ्यास की वृत्ति देखिये ! अब प्रवचनका समय पूरा हो जायगा, उसके बाद उठकर महिलायें रसोई करने जायेंगी, तो घर जाकर चूल्हा कहाँ रखा है ? यह समझनेके लिए क्या पूछताछ करनी पड़ती है अथवा कुछ अनुग्रह लगाना पड़ता है या किन्हीं चिन्होंको समझना पड़ता है कि चूल्हा कहाँ रहा ? अरे खूब मालूम होता है और बिना ही पाँव धोये झट घुस गए। वहाँ जो कुछ जानना है उसकी प्रमाणता स्वतः है। और, कोई महिला चाहे कि आज हम इनके घरमें खाना बनाकर खायें तो वहाँ कई चीजोंकी प्रमाणता स्वतः नहीं बन पाती, परतः बनती है। रसोईघरमें चूल्हेके पीछे अल्मारीमें कई डिब्बे रखे हैं —धना, जीरा, नमक, मिर्च आदिके। उस घरकी महिला तो झट उन डिब्बोंसे बिना देखे जो चाहे निकाल लेगी, किन्तु दूसरे घरकी महिला उन डिब्बों को खोल खोलकर देखेगी, परखेगी, तो वहाँ कुछ परसे प्रमाणता आयी कि नहीं आयी कुछ अन्य अन्य ज्ञान बनाने पड़े ना। पर प्रमाणोंकी प्रमाणताकी हम कुछ जानकारी करें तो उसका जो विश्लेषण ज्ञान बना वह ज्ञान उनसे अलग है, उससे प्रमाणताकी उत्पत्ति हुई, मगर जाननरूप प्रमाणता, जो पदार्थमें प्रवृत्ति और निवृत्ति करादे ऐसी प्रमाणता अभ्यास-दशामें स्वतः होती है और अनभ्यास दशामें परतः होती है।

ज्ञानमात्रसे प्रामाण्यकी असिद्धि—पूर्वप्रतिवादित उन तीन विकल्पोंमें से यदि प्रथम विकल्प माना जाय सर्वत्र प्रमाणकी प्रमाणता उत्पत्तिमें स्वतःका अर्थ क्या कि अन्य कारणके बिना केवल आत्मा से ही प्रमाणता हुई है। तो प्रथम तो सर्वत्र यह नित्य है सो सभी ज्ञान प्रमाण हो जायें, फिर प्रतिनियत प्रमाण कुछ नहीं रहा और फिर प्रवृत्ति निवृत्ति भी कुछ नहीं रहे। यदि कहो कि आत्मीय सामग्रीसे प्रामाण्यकी उपतत्ति होती है तो यह बात तो सही है। अपनी सामग्रीसे ही सकल भावोंकी उत्पत्ति मानी गई है। और यदि कहो कि केवल ज्ञानमात्रसे बनता तो यह भी यों ठीक नहीं कि जो विशिष्ट कार्य है वह विशिष्ट कारणसे ही होगा यों न होगा। यों समझना कि ज्ञान जानकारी तो परिचयमें स्वतः करले और अपरिचयमें परसे किया करती है। जितने भी जीव हैं चाहे वे संसारी हों या मुक्त, किसी अवस्थामें हों उनके द्रव्यस्वरूपको देखा जाय तो सब ज्ञान स्वरूप हैं और ज्ञान नाम

http://sahjanandvarnishastra.org/

है एक जानकारीका व्यवसाय निश्चय निर्णय, और ज्ञान होता है प्रमाणभूत पक्काई करने वाली कि वस्तु इस ही प्रकार है, तो किसी भी पदार्थको जब हम जानते हैं तो जाननेके साथ ही उसमें पक्काई कुछ न कुछ होती है। प्रामाण्य तो जाननेके साथ ही पड़ा हुआ है किन्तु जब उस प्रमाणपनेको निरखकर बैठें तो प्रमाणका निर्णय ऐसे ज्ञानसे होगा। प्रमाण तो बन गया उस ही ज्ञानसे क्योंकि यदि जाननेके साथ ही ज्ञानमें प्रामाण्य न हो तो हम उस पदार्थको उठानेके लिये उद्यम कैसे करेंगे ? तो जाननेके ही साथ प्रमाणमें प्रमाणता आ जाती है पर उस प्रमाणताका हम निर्णय करें, उस प्रमाणताका उत्पादन करें तो वह परसे होगा और जानकारीमें तो वह प्रमाण अभ्यास दशामें स्वतः बनता है और अनभ्यास दशामें परसे बनता है।

विज्ञानमात्रसे प्रामाण्यका अनिर्णय—जो लोग ज्ञानकी प्रमाणता स्वतः मानते हैं एक एकान्त करके और उसके लिये युक्ति देते हैं कि ज्ञानमात्र सामग्रीसे ही वह प्रमाणता बन जाती है, जाना बस इस हीसे प्रमाणता आ गयी, यह कहना उन का ठीक नहीं है। जो विधिवत कार्य होता है वह विधिवत करणसे उत्पन्न होता। जैसे गेहूँ उत्पन्न होगा तो गेहूँके ही बीजसे होगा चनेसे न होगा ऐसे ही चौकीका ज्ञान किया और इस ज्ञानमें प्रमाणता आयी तो चौकी सम्बन्धी जानकारीके साधनसे प्रमाणता आयी। और अन्य पदार्थको जानेंगे उसमें जो प्रमाणता आयगी वह उसके साधनसे आयगी। प्रमाणता किसी खास कारणसे उत्पन्न होती है क्योंकि प्रामाण्य विशिष्ट कार्य है। ज्ञानकी मजबूती करना और भिन्न भिन्न पदार्थोंकी प्रमाणता जानना ये भिन्न भिन्न कारणोंसे होते हैं। जैसे अप्रमाण याने ज्ञानमें कच्चापन, सदोष ज्ञान किसी कारणसे उत्पन्न होता है—एक चन्द्रके बजाय कई चन्द्र दिखने लगे, इसमें आँखों का दोष है। अप्रमाण दोष सदोष कारणोंसे उत्पन्न होता है। तो फिर जो प्रमाण ज्ञान है, सही ज्ञान है वह निर्दोष और गुणवान कारणोंसे उत्पन्न होता है। तो जैसे अप्रमाणरूप विशिष्ट कार्य काँच कामल आदिक दोषोंसे सहित नेत्र आदिक इन्द्रियोंसे उत्पन्न होते हैं इसी प्रकार प्रमाणका प्रामाण्य भी गुण सहित चक्षु आदिक इन्द्रियसे उत्पन्न होता है।

स्वतः व परतः प्रामायण्का अनुविधान—जानकारीमें अभ्यास दशा व अनभ्यास दशाका भेद है। अपरिचयकी जगह है, वहाँ प्रामाण्य स्वतः नहीं उत्पन्न होता है, क्योंकि अपरिचित जगहमें सन्देह हुआ करता है, विपर्यय हुआ करता है। चले जा रहे हैं रास्तेमें कुछ प्यास लगी कुछ पानीके चिन्ह भी समझमें आये, कुछ सन्देह भी होने लगा कि पानी यहाँ है कि नहीं ? कुछ कभी विपर्यय भी हो जाता, पानी तो है नहीं, और समझमें आता कि है पानी ! तो जो अनभ्यासकी स्थिति है वहाँ ज्ञानमें प्रमाणता आती है तो पर पदार्थोंसे, साधनसे, युक्तिसे, अन्य ज्ञानसे आती है। अभ्यास दशामें प्रमाण और अप्रमाण दोनों ही स्वतः होते हैं और प्रवृत्तिरूप

Report any errors at vikasnd@gmail.com

क्रियामें भी अनभ्यास दशामें स्वतः नहीं होती प्रमाणता। जैसे कि अप्रमाणता स्वतः नहीं होती। कोई पदार्थ जब ज्ञानमें आये तब ही तो उससे हटना होगा हटेगा लगना होगा लगेगा, बिना ज्ञानके बिना प्रमाणके तो नहीं होता। रसोई बना रहे यह अग्नि ही है ऐसा पूरा ज्ञान बैठा है ना, तभी तो झट रोटी बेली और आगमें सेक लिया। कभी यह सन्देह तो नहीं होता कि कल तो रोटी सिक गयी थी आज सिकेगी या नहीं ? अरे, वह तो अभ्यास दशा है, निःशङ्कतासे स्वयमेव सारी प्रवृत्ति हो रही हैं। तो ज्ञानमें जो प्रमाणता आती है वह अभ्यासकी स्थितिमें स्वयं आती है, अनभ्यासकी स्थितिमें परसे आती है और प्रमाणमें जो प्रमाणताकी उत्पत्ति है,निर्णय है, प्रतिबन्धन है, विश्लेषण है वह अन्य ज्ञानसे, अन्य साधनोंसे होता है।

गुणका अभाव होनेसे प्रामाण्यका परतः सिद्ध न होनेका पक्ष—यहाँ शङ्काकार कहता है कि तुमने जो यह कहा कि इन्द्रिय आदिक सदोष हैं तो जैसे अप्रमाणता उत्पन्न होती है ऐसे ही इन्द्रियादिक गुण सहित हैं तो गुण सहित इन्द्रियसे प्रमाणता उत्पन्न होती है। शंकाकार इस सम्बन्धमें यह कह रहा है कि गुण तो कोई चीज ही नहीं है। अब शङ्काकारकी बात सुनो ! दुनियामें गुण हुआ ही नहीं करते। हुआ तो करते हैं दोष। दोष न रहे उसीको लोग गुण कहा करते हैं। गुण कोई चीज नहीं है। इस सम्बन्धमें यदि शङ्काकारकी बातका समर्थन करना हो तो यों निरखिये ! जैसे प्रतिजीवी गुण हैं ना, सूक्ष्म, अव्याबाध, अगुरुलघुत्व, अवगाहनत्व ये प्रतिजीवी गुण क्यों कहलाते ? ये अभावरूप गुण हैं, इनमें डिग्रियां नहीं हैं, हानि-वृद्धि नहीं है, तो प्रतिजीवी गुण मानें। देखिये ! गुण कुछ नहीं है और इसके विपरीत जो दोष हैं वे हैं अच्छी तरहसे। सूक्ष्मका प्रतिपक्ष है बन्धनमें आना, अगुरुलगुत्वका प्रतिपक्ष है बड़ा–छोटा होना। तो ये दोषवाली चीजें हैं गुण वाली नहीं हैं। दोष न रहे, दोषोंका अभाव हो गया उसीको तुम सूक्ष्मत्व कहते हो ! जैसे जैन लोग भी अभावरूप प्रतिजीवी मानते ऐसे ही दुनियामें सर्वत्र गुण हैं नहीं कुछ, किन्तु दोष नहीं रहे, इसीको लोग गुण कहने लगते हैं ऐसा शङ्काकार कह रहा है। क्योंकि गुण किसी भी प्रमाणसे समझे नहीं जा सकते, असत् हैं। गुण कोई चीज ही नहीं है। दोष न रहे उसीका नाम गुण है।

पूर्वपक्षकार द्वारा गुणोंकी प्रत्यक्षसे असिद्धिका कथन—गुणोंको हम प्रत्यक्षसे तो जान नहीं सकते। जैसे कोई कहे कि हमारी आँख साफ है पर वह जो साफ गुण है वह किसीको दिखाया जा सकता है क्या ? शङ्काकार कह रहा है कि गुण प्रत्यक्षसे तो नजरमें आता नहीं क्योंकि इन्द्रिय अतीन्द्रिय हैं। इन्द्रियमें जो गुण है वह अतीन्द्रिय है इन्द्रिय द्वारा नहीं जाना जाता इसलिये इन्द्रियके गुण प्रतीतिमें नहीं आते अतएव गुण कुछ नहीं है। गुणकी सिद्धि प्रत्यक्षसे नहीं।

पूर्वपक्षकार द्वारा गुणोंकी अनुमानसे असिद्धिका कथन—अनुमानसे भी

http://sahjanandvarnishastra.org/

गुणकी सिद्धि नहीं, क्योंकि अनुमान तब बनता जब अविनाभाव सम्बन्ध हो। इन्द्रिय के गुणोंके साथ जिसका अविनाभाव हो ऐसा कोई साधन हो तो बतावो वह साधन प्रत्यक्षसे जाना जाता या अनुमानसे। जैसे किसी पर्वतमें हम अग्निका अनुमान करेंगे तो अग्निको सिद्ध करने वाला हेतु है धुवां। तो धुवां प्रत्यक्षसे जाना जा रहा है तब अग्निका हम अनुमान करते हैं तो इन्द्रियमें गुण हैं उन गुणोंको सिद्ध करने वाले जो साधन हैं क्या वे प्रत्यक्षसे जाने जाते या अनुमानसे? प्रत्यक्षसे तो जाना नहीं जा रहा। अनुमानसे भी नहीं जाना जा रहा, क्योंकि जब तक उसका अविनाभाव सम्बन्ध नहीं सिद्ध होता तब तक साधन साध्यको सिद्ध नहीं कर सकते। धुवांका और अग्निका अविनाभाव सम्बन्ध है। अग्नि न हो तो धुवां नहीं हो सकता। उससे अग्नि सिद्ध है। आप कहेंगे कि रेल चलती है और धुवा छोड़ दिया वह और तेजीसे चलदी। अब वह चार मील दूर पहुंच गयी, धुवा यहां उड़ रहा कि अग्निके विना धुवां नहीं रहा। अरे सम्बन्ध रहा चाहे रेल कितनी ही दूर चली गई हो। अग्निके बिना धुवां हो ही नहीं सकता। तो अविनाभाव सम्बन्ध है ऐसे ही इन्द्रियोंमें भी गुण है यह सिद्ध करनेके लिए उन गुणोंका साधने वाला जो हेतु हो उसका अविनाभाव सम्बन्ध सिद्ध होना चाहिए। यदि उसको अन्य अनुमानसे सिद्ध करोगे तो अनवस्था दोष है। वहां भी अविनाभाव चाहिए उसे करेंगे अन्य अनुमानसे सिद्ध करोगे तो अन्योन्याश्रय दोष है। मतलव यह है कि जहांपर अविनाभाव सम्बन्ध सिद्ध नहीं है यहां अनुमान नहीं बनता। यह सब शङ्काकार कह रहा है और बहुत लम्बी शङ्का रख रहा है कि गुण दुनियामें कोई होता ही नहीं। दोष जरूर होते हैं। जब दोष नहीं रहे तो उसीका नाम लोग गुण कहने लगते।

गुणके अभावकी मान्यताके आधारकी कल्पना—शङ्काकारकी यह दृष्टि कैसे बनी? कुछ थोड़ी बहुत ऐसी बात न हो तो कैसे कोई गढ़ ले। कुछ बात तो होगी इस तरहकी। कुछ लगता तो होगा। हां तो देखिये लगता कैसे नहीं। रागद्वेष विकल्प विचार अनुग्रह विग्रह ये सब दोष रूप अच्छी तरह जच रहे कि नहीं? अरे ये विकार एक भी न रहे तब जो आत्माकी स्थिति हो ज्ञानकी स्थिति हो तो कहने तो जरूर ऐसा लगते कि वह सर्वज्ञ हो जाय पर वह सर्वज्ञ क्या इस तरह जान लेते कि यह चौकी है, यह चटाई है आदिक? उसका ज्ञान ऐसा साधारण होता कि जिस का स्वरूप समझने बैठें सो यों लगे कि न कुछ। विकारमें तो लग रहा कि सब कुछ है, और विकार न रहे तो एसा लगेगा न कुछ। गुण तो यहाँ है नहीं यह ही गुण हैं, जैसे कोई लड़का उद्दण्ड हो तो उसपर झल्लाकर कहते कि इसमें ऐसे ऐसे गुण हैं अवगुणके लिये, दोषके लिये गुण कहा। तो दोष है दुनियामें, पर गुण नामकी कोई चीज नहीं है।

प्रत्यक्ष और अनुमान दोनों प्रमाणोंसे गुणोंके अभावके समर्थनका पक्ष

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

यहाँ शङ्काकार कह रहा है । गुण किससे सिद्ध करोगे ? प्रत्यक्षसे सो नजर नहीं आता और अनुमानसे जब उसका कोई साधन हुआ, तो साधन क्या ? क्या स्वभाव हेतु है या कर्मरूप हेतु है या अनुवलब्धि हेतु है कोई चीज हम अनुपलब्धि हेतुसे पैदा करें तो उसमें मुख्यतया तीन प्रकारके कारण होते हैं । भूलमें तो दो साधन हैं । किसी चीजके सद्भाव को साध्य सिद्ध करना किसी चीजके अभावको साध्य सिद्ध करना । जैसे ऊपर पानी बहुत बरषा है नदीका पूर आनेसे । यह सद्भावको सिद्ध किया । ऊपर सूखा पड़ रहा है नदीमें पानी न रहनेसे; तो यह अभावसे कोई बात सिद्ध की । साध्यकी सिद्धि सद्भावसे भी होती और अभावसे भी । अनुमानमें कितने ही प्रकारके हेतु होते ? तो जो सद्भाव वाले हेतु हैं वे दो प्रकारके हैं—एक स्वभावरूप और एक कार्यरूप । जैसे धुवां देखकर आगका ज्ञान करना यह कार्यरूप हेतु है और यह पेड़ है क्योंकि सीसम है यह व्याप्तरूप स्वभाव हेतु है । तो यों अनेक प्रकारके हेतु होते हैं उनमें । इन इन्द्रियोंमें गुण है इसको सिद्ध किस हेतुसे करोगे यह पूछ रहा है शङ्काकार । शङ्काकारका प्रयोजन यह है कि इन्द्रियमें गुण नहीं होते दोष हुआ करते । अतएव ज्ञानमें अप्रामाण्यकी उत्पत्ति तो दोषसे हो जाती है, पर ज्ञानमें प्रमाणताकी उत्पत्ति परसे नहीं होती, गुण है ही नहीं, अतः प्रामाण्यकी उत्पत्ति स्वतः होती रहती है । यों ज्ञानकी प्रमाणताके निर्णयके प्रसंगमें शङ्काकार इन्द्रियके गुणोंका अभाव प्रकट कर रहा है ।

गुणके अभावके पक्षका विश्लेषण— देखिये जब आँखमें कोई फुली सी हो जाय तो दूसरेसे कहते हैं देखना जी हमारी आँखमें फुल्ली हो गयी । वह देखकर कहेगा कि हाँ हो तो गयी । देखना जी आंखमें कुछ ललाई आ गयी । हां आ तो गई, और देखिये कुछ टेंटवा सा हो गया । हाँ हो तो गया । और—देखना जी कुछ मोतिया बिन्दुसा हो गया, हाँ हो तो गया । मोतिया बिन्दु कुछ कम समझमें आये, तो यंत्र लगाकर देखो – हाँ है तो कोई दोष । आंखके दोष यंत्रसे देख लिये जाते हैं । और, देखना जी हमारी आंख पूर्ण निर्मल है साफ है ? हा आंख साफ तो दिखती है । अरे जो साफ दिखता है वह साफ कोई चीज है क्या ? जैसे मोतिया बिन्दु चिमटेसे पकड़कर दुनियाको दिखा देते हैं—लो यह है पर्दा जिससे आंख दबी हुई थी । या हाथसे छूकर देख लेते हैं कि हा लगा है टेंट । इस प्रकार क्या इन्द्रियके गुण भी देखनेमें आ गए ? बस इसी आधारपर शङ्काकार यह कह रहा है कि इन्द्रियमें गुण नहीं होते, दोष होते—और दोष न रहनेका नाम गुण है । वीतरागका अर्थ है क्या ? वीतरागतामें मिला क्या ? कोई चीज है वहां क्या ? अरे वहां रागका अभाव है । है वहां कुछ चीज नहीं । जैसे कमरा साफ है तो वहां मिलेगा कुछ नहीं । कूड़ा, कचरा, सींक आदि वहां कुछ न मिलेगा । तो जैसे साफमें कुछ नहीं है ऐसे ही गुणमें कुछ नहीं रखा, दोषमें सत्ता है यहाँ शङ्काकार कह रहा है कि इन्द्रियमें दोष तो हुआ करता है पर गुण नहीं हुआ करता ।

गुण और दोषोंकी वस्तुगतता— आचार्यदेव कह रहे हैं कि गुण ही कुछ

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

नहीं हो ऐसा नहीं है गुणसे होती है प्रमाणताकी उत्पत्ति । एक आदमी चन्द्रमाको देखकर कहता है कि यह कितना बढ़िया चन्द्रमा है और एक पुरुष कहता है कि हमें तो २ चन्द्रमा दिख रहे हैं, तो सही एक चन्द्रमा दिखनेका कारण क्या है कि उसकी इन्द्रियां गुण सहित हैं और जिसे दो चन्द्र दिखते हैं उसकी इन्द्रियोंमें दोष है । तो जैसे दोषसे ज्ञानके अप्रमाणताकी उत्पत्ति है । ऐसे ही गुणोंसे ज्ञानके प्रमाणताकी उत्पत्ति है । सिद्धान्त तो यह है पर यहाँ ये भाट लोग ज्ञानकी अप्रमाणताकी उत्पत्ति को दोषसे मानते हैं, पर ज्ञानकी प्रमाणताकी उत्पत्ति गुणोंसे नहीं मानते । प्रामाण्य की उत्पत्ति कैसे हुई । दोष नहीं है इसलिये प्रमाण बन गया, गुण तो कोई चीज ही नहीं है । यों गुणोंका अभाव सिद्ध करके शङ्काकार प्रमाणकी उत्पत्ति स्वतः ही मान रहा है । सभी प्रमाण चाहे अनभ्यास दशामें हों जब भी जो प्रमाण बनता है उसकी प्रमाणता स्वतः हुआ करती है । किसी परके कारणसे नहीं । यह शङ्काकारने पक्ष किया है । कुछ और चलकर जब शङ्काकारका मन खूब भर जायगा अपनी शङ्काके समर्थनमें तब इसका निराकरण किया जायगा ।

पूर्वपक्षमें दोषके अभावको गुण कहनेकी परम्परा— प्रमाणमें प्रमाणता की उत्पत्ति अभ्यास दशामें तो स्वतः बनती है और अपरिचयकी दशामें परसे बनती है । यह तो है जानकारोके सम्बन्धकी बात । किन्तु, प्रमाणमें प्रमाणताकी उत्पत्ति इन्द्रिय निर्मल हों तब होती है ना, इस कारण परसे होती है । इसके विरुद्ध भाट्ट दार्शनिक यहां कह रहे हैं कि कुछ भी स्थिति हो उत्पत्ति हो, जानकारी हो, प्रत्येक परिस्थितिमें प्रमाणकी प्रमाणता स्वतः हुआ करती है और अप्रमाणता परसे हुआ करती हैं । उनका तात्पर्य यह है कि चक्षु आदिक जो इन्द्रियां हैं इनमें यदि दोष हो कुछ तो अप्रमाणता बनती है । कोई आंखोंमें कमला कांच आदिक दोष है जिससे अनेक चन्द्र, दिखें, सब पीला दिखे तो जो कुछ अप्रमाणता बनती है वह दोषके कारण बनती है इसलिये अप्रमाणताकी उत्पत्ति परसे होती है; पर दोष न रहे ऐसी इन्द्रियसे जो उत्पन्न हुई प्रमाणता है उसमें पर क्या हुआ जिससे प्रमाणकी उत्पत्ति मानी जाय, गुण तो इन्द्रियका स्वरूप है कोई पर वस्तु नहीं है दोष परवस्तु है । और दोषसे जो ज्ञान बनता है वह परसे उत्पन्न कहलाया और निर्मल इन्द्रियसे जो ज्ञान बना कह स्वतः बना । शङ्काकार यह माननेको तैयार नही है कि इन्द्रियमें दोष आया । तो जैसे वह दोष विशिष्ट इन्द्रिय बनी ऐसे ही दो बन रहे तो वह गुण विशिष्ट इन्द्रिय हैं ।

गुणके अभावकी सिद्धिका प्रयास— गुणका सद्भाव शङ्काकार नहीं मानता गुण किसी चीजमें होता ही नही ? वह तो मात्र मूल चीज है । दोष हुआ करते हैं । सत्ता दोषकी है, गुणकी सत्ता नहीं होती । बतावो अच्छा यह गुण क्या प्रत्यक्षसे दिखता है ? प्रत्यक्ष तो गुणोंके देखनेमें समर्थ नहीं, क्योंकि इन्द्रिय तो अतीन्द्रिय हैं

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अर्थात् इन्द्रियको इन्द्रियसे जाना नहीं जा सकता। जो लोग जानते हैं देख करके वे इन्द्रियां कहां हैं? कान दिख गए पर जो दिख रहे ये सुनने वाले नहीं हैं। यह तो एक चमड़ा है, भार है। जो असली कर्ण इन्द्रिय है उसे किस इन्द्रियसे जानते हैं? छूकर कर्ण इन्द्रिय नहीं जानी जाती। और कर्ण इन्द्रिय जो स्वयं है, कर्णसे भी नहीं जाना जाता। इस कर्ण बिवरमें जो अन्तर हुआ उसमें जो श्रवण शक्ति है वह कर्ण इन्द्रिय है। शेष तो सब चर्म है, इसी प्रकार सब इन्द्रियोंकी बात है। यहाँ तक कि स्पशन इन्द्रियको भी कोई नहीं जानता। जो यह सारा शरीर है और कह देते हैं कि सारा शरीर स्पर्शन इन्द्रिय ही तो है। इसको छूकर जाना जाता है भले ही छूकर जाना जाय, ठीक है पर जिस शक्तिसे जिस गुणसे जिस अन्तर विधिसे जाना जाता है स्पर्शन उसे जानता है। तो इन्द्रिय तो अतीन्द्रिय है, जब इन्द्रियका ही हमें ज्ञान नहीं है तो हम गुणोंका क्या ज्ञान करें? जहाँ भींट ही नहीं है वहा चित्रोंका क्या बखान करें?

गुणके प्रतिषेधसे दोषका भी प्रतिषेध- यहां शङ्काकार कह रहा है कि गुणोंकी प्रतीति युक्त नहीं है। गुण हैं ही नहीं, हां दोषोंकी प्रतीति होती है। दोष दिखते हैं पर गुण तो कुछ अलग चीज नहीं है, वह तो इन्द्रियका स्वरूप है जो कि अतीन्द्रिय हैं। अब उन इन्द्रियोंसे जो ज्ञान बना, प्रमाण बना उसकी प्रमाणतासे पर से नहीं होती। हां अप्रमाणकी उत्पत्ति परसे होती है। इसपर आचार्यदेव उत्तर देते हैं कि तुम जो यह कहते हो कि प्रत्यक्ष गुणोंको जाननेमें समर्थ नहीं है, इन्द्रियको जाननेमें समर्थ नहीं है तो यह बतलावो—क्या शक्तिरूप इन्द्रियमें गुणोंकी प्राप्ति न होनेसे अभाव कहते हो या यह व्यक्तरूप प्रकट रूप इन्द्रियमें गुणोंका अभाव सिद्ध करते हो तो दोषोंका भी अभाव सिद्ध हो गया। शक्तिरूप इन्द्रिय प्रत्यक्षसे ज्ञात नहीं तो उसमें जैसे न गुण जान सकते वैसे दोष भी नहीं जान सकते। तो दोषको भी प्रत्यक्ष करने वाला ज्ञान नहीं रहा। गुणोंका भी अभाव हो तो दोषोंका भी अभाव हो। फिर अप्रमाणको पर से मानना यह बात न बनेगी।

इन्द्रियमें गुणके अभावकी मान्यतापर प्रश्न-- सिद्धान्त तो यह है कि चाहे प्रमाणता बने चाहे अप्रमाणता बने, परिचयकी दशामें तो वह स्वतः बनती है। और अपरिचयकी स्थितिमें परतः बनती है। तो शक्तिरूप इन्द्रियमें गुणोंका अभाव सिद्ध किया जा सकता क्योंकि जब इन्द्रिय ही ज्ञात नहीं हैं, जब गुणोंका अभाव मानते हो तो दोषका भी अभाव हुआ। यदि कहो कि ये जो प्रकटरूप इन्द्रियां हैं-- शरीरके बाहर जो प्रकट हैं उन इन्द्रियोंमें गुणोंका अभाव सिद्ध करते हैं। तो यह बतलावो कि इन इन्द्रियोंमें गुणोंका अभाव तुम अपने प्रत्यक्षसे सिद्ध करोगे या दूसरे के प्रत्यक्षसे सिद्ध करोगे? यहां यह सिद्ध किया जा रहा है शङ्काकारकी ओरसे कि इन्द्रियमें गुण नहीं हुआ करते, दोष हुआ करते हैं। दोष न रहे ऐसी स्थितिमें प्रमाण

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बनता है, दोष रहे ऐसी स्थितिमें अप्रमाण बनता है। तो उनसे पूछा गया कि किस इन्द्रियमें तुम गुणोंका अभाव मानते हो शक्तिरूप इन्द्रियमें या व्यक्तिरूप इन्द्रियमें ?

इन्द्रियमें गुण और दोषकी सिद्धि—यदि शक्तिरूप इन्द्रियमें गुण हमें प्रत्यक्षसे नजर नहीं आते ऐसा कहते हो तो यह बतलावो कि हमारी इन्द्रियमें गुण हमारे प्रत्यक्षसे नजर नहीं आता या दूसरेके प्रत्यक्षसे दृष्टिसे नहीं आता। यदि कहो कि हमारे प्रत्यक्षसे हमारे व्यक्तिरूप इन्द्रियमें गुण नजर नहीं आते तो यों तो दोष भी नजर न आयेंगे। अपनी आंखमें टेंट हो, फूली हो, मोतिया बिन्दु हो, काच कामल आदिक दोष हों तो अपनी इन्द्रियसे खुदकी इन्द्रियका दोष कौन जान लेता, यों दोषों का भी अभाव हो जायगा। यदि यह कहो कि आंखके द्वारा नहीं जान सकते किन्तु स्पर्शन इन्द्रियके द्वारा तो जान लेंगे ? तो भाई स्पर्शनसे तो केवल चक्षुका सद्भाव मात्र जान लोगे। चक्षुमें कोई दोष है यह आंखका स्पर्शनसे कैसे जानोगे तो अपने ही प्रत्यक्षसे हमारी इन्द्रियमें गुण नजर नहीं आता इस कारण गुण कुछ नहीं है ऐसा माननेपर दोष भी कुछ नहीं रहे। हमारे प्रत्यक्षसे हमारी इन्द्रियोंमें दोष भी नजर नहीं आता यदि यह कहो कि दूसरेके प्रत्यक्षसे हमारे इन्द्रियके गुण नजर नहीं होते इस कारण गुणोंका अभाव है। तो यह बात तो असिद्ध है। क्योंकि जैसे दूसरे लोग हमारे नेत्रमें यह देख सकते हैं कि इसके नेत्रमें काँच कामला आदिक दोष हैं इसी प्रकार यह भी तो दिखता है कि इसकी इन्द्रियमें पूरी निर्मलता है। जैसे दूसरेकी आंखमें कांच कामल आदिक दोष प्रत्यक्षसे देखे जा सकते इसी तरह दूसरे लोग प्रत्यक्ष से चक्षु आदिक इन्द्रियमें निर्मलता आदिक गुण भी देख सकते हैं। इस कारण प्रत्यक्ष से जैसे दोष प्रतीतिमें आता है ऐसे ही गुण भी प्रतीतिमें आते हैं।

गुण सिद्धिके प्रसङ्गमें विविध प्रश्नोत्तर—यदि ऐसा कहो कि बालक उत्पन्न हो तो आंख आदिक इन्द्रियमें निर्मलता उसकी उत्पत्तिके साथ होती है, इसलिये गुण क्या रहा ? बादमें यदि कोई कांच कामल आदिक दोष बने तो चीज तो वह है जो शुरूसे ही है, उत्पन्न होती ही है, वह क्या चीज है, वह तो इन्द्रिय है, गुण कहां निर्मलता आदिकसे सहित इन्द्रियां प्रतीतिमें आती हैं इस कारण इन्द्रियमें गुण रूपता नहीं रही। तो भाई कोई जन्मसे अंधा होता है तो उसमें भी इन्द्रियां स्वरूपसे अतिरिक्त कोई तिमिर आदिक दोष न माने जायें। जिसके उत्पन्न होते ही इन्द्रियमें निर्मलता प्रतीत है इस कारण इन्द्रियसे अलग कोई गुणरूपता कुछ नहीं है तो जन्मान्ध पुरुषमें इन्द्रियके स्वरूपके अतिरिक्त दोष कुछ नहीं रहे। और, यदि यों ही गुणोंका अभाव मानोगे कि इन्द्रियके स्वरूपसे अतिरिक्त गुण कुछ नहीं है। तो अच्छा यह बता दो कि इस चौकीमें जो रूप आदिक हैं ये चौकीके गुण नहीं है क्या ? चौकी से अतिरिक्त रूप आदिक कुछ नहीं होते इसलिये रूप आदिक कुछ नहीं है यों कह बैठोगे क्या जैसे इन्द्रियमें इन्द्रियके स्वरूपसे जुदा गुण कुछ नहीं है। जैसे टेंट वह

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

इन्द्रियसे जुदी चीज हो गयी ना, कोई चीज ऊँची उठ गई उसे तो दोष मानते हैं और साफ नजर हो उसे गुण नहीं मानता यह शङ्काकार। इसको कहता है कि वह तो इन्द्रियका स्वरूप है गुणका होना। तो वाह ! स्वरूप ही तो गुण है। यदि स्वरूपको गुण नहीं मानते तो फिर यह बतलाओ कि इस चौकीमें रूप आदिक कुछ है नहीं क्या ? उन्हें भी असत् मान लो। यदि स्वरूपको गुण न मानोगे तो रूप आदिकमें घट पट आदिकका गुण स्वभाव है, यह कैसे मान सकोगे ? क्योंकि जबसे यह काठ है, मिट्टी है, तबसे इसमें रूप नजर आता। जैसे जबसे इन्द्रिय हों तबसे निर्मलता है इसलिए गुण कोई चीज नहीं है, निर्मलता कोई वस्तु नहीं है। तो यों ही सारे पदार्थ जबसे हैं तबसे इस रूप हैं तो फिर रूप कुछ चीज नहीं रहा। यों तो पदार्थका अभाव बन जायगा। स्वरूपको गुण नहीं मानते तो वस्तु फिर क्या रही ? तो प्रमाण जब गुणी इन्द्रियसे जाना जाता है तब वह परसे उत्पन्न हुआ कहलाता है। ऐसे ही अप्रमाण जब दोषीक इन्द्रियसे प्रतीत होता तो वह परसे प्रतीत होता तो वह परसे उत्पन्न हुआ समझिये।

ज्ञानविलासका प्रथम रहस्य—यहाँ ज्ञानके सम्बन्धमें इस प्रसङ्गकी जानकारी करनेकी कई पर्तें हैं। प्रथम तो ज्ञान किसे भी जाने, जाननेके साथ ही ज्ञानवृत्ति खुदपर गुजरती है। इस दृष्टि से सभी ज्ञान स्वसम्वेदी हैं, अपने आपको जानते हैं। जैसे तार दिया जाता है तो तारकी हलनके दूसरी जगह जो आवाज उत्पन्न होती है, उससे वे समाचार जान लेते हैं, यदि मूलमें गुजरी हलन तो वह हलन अन्त तक जाय ऐसे ही जानकारीकी विधि जब स्वयंपर गुजरी तब पदार्थकी जानकारी बनी। तो जानकारी खुदपरसे गुजरी तो वह स्वसम्वेदन हुआ ना। यों प्रत्येक ज्ञान चाहे अभ्यास दशामें हों चाहे अनभ्यास दशामें हों, चाहे यथार्थस्वरूप हों चाहे अयथार्थ ज्ञान हों, ज्ञान कुछ करता है तो खुदपर ज्ञान वृत्ति गुजरती है। तब ज्ञानका कार्य जानन बनता है यहां इस प्रसंगकी सबसे अंतरङ्गकी बात कही गई है और इस दृष्टिसे ज्ञान सबको प्रत्यक्ष है। हर स्थितिमें प्रत्यक्ष है और इस प्रत्यक्षका अर्थ केवल खुदपर गुजरता, खुदकी प्रतीतिमें आकर उसका काम होना, ज्ञान सामान्यमें प्रतीति बनकर उसका कार्य चलना यह प्रत्यक्षका अर्थ है।

ज्ञानविलासका द्वितीय रहस्य—अब इसके बाद दूसरी चीज लीजिये। पदार्थकी जानकारी हुई। अब वह जानकारी प्रमाणभूत होती है तो वह अपरिचय की हालतमें तो स्वतः होती है और परिचयकी हालतमें परतः होती है। जैसे चले जा रहे हैं, प्यास लगी, पानीकी चाह हुई, आगे जाकर जान लिया कि यह पानी है। पीने चले गए, तो वह परिचय वाली स्थिति है। एकदम स्पष्ट दिख गया तो परिचय हो गया अथवा जिस रास्तेसे रोज गुजरते थे वही जलाशय था, पहिलेसे जाना हुआ था तो स्वतः प्रमाण हुआ। पर जिस रास्तेसे नहीं गए, अथवा पानीकी तलाश जिसे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

रास्तेमें कभी नहीं करते थे वहां जरूरत हुई पानीकी तो पानीके खोजनेके पहिले व्यग्रता हुई। फिर कुछ अनुमान लगाया, कुछ मेंढ़कोंकी आवाज आयी। उससे पहिचाना, कहीं टूटी फूटी घड़ेकी खपरियां पड़ी थी उससे अंदाज किया। थोड़ा और चले तो लोग दीखे, उसस अंदाज हुआ, फिर पानी भरकर ला रहे लोग दीखे, यों पानीका परिज्ञान हुआ तो कितने परसे परिज्ञान बना। यह ज्ञानके दूसरे पर्तकी बात कह रहे हैं कि ज्ञानमें यह प्रमाणता जो जानकारीसे सम्बन्ध रखती है वह अभ्यास दशामें स्वतः होती है और अनभ्यास दशामें परसे होती है।

ज्ञानविलासका तृतीय रहस्य—अब तीसरी बात सुनिये—कोईसा भी ज्ञान हुआ हो अनभ्यास दशाका अथवा अभ्यास दशाका, उसमें जो प्रमाणताकी उत्पत्ति हुई है केवल जानकारीके सिलसिलेमें न सोचना, किन्तु प्रमाणकी जो उत्पत्ति हुई है वह निर्मल इन्द्रियसे हुई है तो परतः हुई और सदोष इन्द्रियसे हुई है तो परतः हुई है मतलब यह समझिये कि जैसे तत्वार्थ सूत्रमें कहा है कि हमारे आपके ज्ञान तो इन्द्रिय और मनसे उत्पन्न होते हैं उसीकी यह चर्चा है। प्रमाणकी प्रमाणता परसे होती है ऐसा सुनकर कहीं परमात्माके केवल ज्ञानमें न घटाना, किन्तु हम आपको जो ज्ञान हुआ करते हैं उन ज्ञानोंमें दिखाया जा रहा है सूत्र जीमें कहते हैं कि मतिज्ञान इन्द्रिय और मनके निमित्तसे उत्पन्न होता है, तो उत्पत्ति परसे हुई ना। दर्शन शास्त्रकी बात है यह। अध्यात्ममें तो जो पर्याय बनती है वह उस ही पदार्थसे बनती हैं। उसका उपादान वही है, किन्तु यहां तो सर्वतोमुखी निर्णयकी बात चल रही है। तो ज्ञान इन्द्रिय और मनसे उत्पन्न हुआ, इसका अर्थ यह हुआ कि आधुनिक ज्ञानकी उत्पत्ति प्रमाणकी उत्पत्ति, प्रामाण्यकी उत्पत्ति परसे हुई।

ज्ञानका ज्ञान—ज्ञानके सम्बन्धमें तीन स्थलोंसे ये तीन बातें समझना चाहिए। प्रत्येक ज्ञान स्वसम्वेदी है यह पहिले पर्तकी बात है और ज्ञानमें प्रमाणता ज्ञप्तिमें प्रमाणता अभ्यास दशामें स्वतः होती है अनभ्यास दशामें परसे होती है। यह दूसरे पर्तकी बात है, और तीसरी बात यह है कि हम आपके ये सब प्रमाण जो हैं इनमें प्रमाणता परसे ही आती है अर्थात् उसकी उत्पत्ति परसे ही हुआ करती है। यों ज्ञानके सम्बन्धमें विश्लेषण किया जा रहा है। चूंकि जिस ज्ञानके द्वारा अयथार्थ बातका निराकरण करेंगे, यथार्थ बातका समर्थन करेंगे उस ज्ञानकी अधिकसे अधिक जानकारी रहे तो समर्थन और निराकरण भली भांति स्पष्ट रूपसे किया जा सकता है।

सर्वतोमुखी ज्ञानमें निर्भयता—जैसे अपने गांवकी मुहल्लेकी, पड़ोसियोंकी बातका परिचय न हो तो कुछ रहना अजीव सा लगता है। अथवा निशंकता जैसी नहीं रहती है। और अपने पड़ोसकी बातका मालूम होनेपर जैसे कि यह घरके सामनेसे जो नाली निकली है तो किस ओरसे निकली कहाँसे निकली, किस ढंगसे आयी, घरके अन्दरके बाहरके स्थलोंका कुछ पता रहनेसे जैसे निवास बिना उलझनके

Report any errors at vikasnd@gmail.com

निशङ्कतासे हुआ करता है ऐसे ही समझिये कि हमारे ज्ञानके आत्मविकासकी बात, ज्ञानके स्वरूपकी बात ज्ञान कैसे प्रकट होता है, प्रकट होते समय ज्ञानमें क्या स्थिति होती है और उसका विस्तार होनेपर ज्ञानकी क्या स्थितियां होती हैं इन सब बातोंका भान हो तो प्रतिपादन निरूपण निशङ्कतया होता है।

http://www.jainkosh.org

सर्वतोमुखी ज्ञानमें स्पष्टता—जैसे कोई मैकेनिक लोग, मशीनरीका ज्ञान करने वाले लोग मात्र एक बर्तमान प्रयोजनकी ही बात सीख ले थोड़ा सा एक तो उसका ज्ञान और एक समस्त पुर्जोंका और उनके अन्वय व्यतिरेकका उनके प्रयोग का प्रभावका सब प्रकारका ज्ञान हो एक उसका प्रतिभास जैसे इन दोनोंमें अन्तर है ऐसे ही ज्ञानके स्वरूपको न जानकर केवल एक बाहरमें यह यथार्थपना अयथार्थपनाका निर्णय प्रतिपादन करे एक उसका निरूपण और एक जिसको ज्ञानके स्वरूपका वृत्तिका प्रभावका सब कुछ परिचय हो और फिर बाहरकी युक्तियोंसे वस्तु स्वरूपका निरूपण करे एक उसका निरूपण इन दोनोंमें कितना अन्तर है? स्पष्टता और निशङ्कतासे निराकरण और समर्थन करनेके लिये उससे पूर्व आचार्यदेव ज्ञान के स्वरूपका सर्वतोमुखी वर्णन कर रहे हैं कि यह ज्ञान यहांसे यों उत्पन्न होता और विस्तारमें इसकी ऐसी स्थितियां हुआ करती हैं।

अनुमान प्रमाणसे इन्द्रियोंके गुण सम्पन्नत्वकी सिद्धि—ज्ञानमें प्रमाणता स्वतः ही होती है उस प्रमाणपनेकी उत्पत्ति परसे कभी नहीं होती ऐसा एक दार्शनिकका अभिमत है। और इसके समर्थनमें यह कहता है कि जिन गुणसम्पन्न इन्द्रिय से पदार्थ जाना जाता है और जिससे कि प्रमाणता बनती मानी है सो प्रथम तो गुणका ही पता नहीं। इन्द्रियमें गुण है इसकी सिद्धि न प्रत्यक्षसे होती है न अनुमानसे होती है। इसपर प्रत्यक्षसे तो सिद्धि कह दी गई है अब अनुमानसे भी यह सिद्ध करते हैं कि चक्षु आदिक इन्द्रियमें गुण हैं। चक्षु आदिक इन्द्रियसे भिन्न किसी चीजके सद्भाव और अभावका जो कार्य सम्बन्ध करे अर्थात् जिसके होने पर कार्य हो, जिसके न होनेपर कार्य न हो वह कार्य उस कारण पूर्वक होता है, जैसे अप्रामाण्य तो अप्रमाणता चक्षु आदिक इन्द्रियसे भिन्न जो दोष हैं उन दोषों से उत्पन्न होता है इसी प्रकार प्रमाणता भी चक्षु सामान्यसे भिन्न जो निर्मलता आदिक गुण हैं उनसे उत्पन्न होते हैं, इस अनुमानसे गुणोंकी सिद्धि हुई।

इन्द्रियोंकी गुणसम्पन्नताके अनुमानमें साधन साध्यका तर्कप्रमाणसे विनिश्चय—गुणोंकी सिद्धिमें एक अनुमान यह दिया गया था कि प्रमाण किसी विशिष्ट कारणसे उत्पन्न होता है, क्योंकि यथार्थ वस्तुस्वरूपका विनिश्चय रूप कार्य पाया जाता है। पदार्थका यथार्थज्ञान और प्रमाण होना किसी विशेष कारणको सिद्ध करता है। वह विशेष कारण है गुण। तो उस सम्बन्धमें शङ्काकारने यह अटकावा डाला था कि विशिष्ट करणजन्य प्रामाण्यका इन्द्रिय गुणोंके साथ सम्बन्ध क्या

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रत्यक्षसे जाना जाता या अनुमानसे। वह भी कहना ठीक नहीं क्योंकि एक ऊहा नाम का, तर्क नामका प्रमाण है, उससे अविनाभाव जाना जाता है। जैसे एक अनुमान बनाया कि पर्वतमें अग्नि होनी चाहिए क्योंकि धुवां होनेसे अब इसको सिद्ध करनेके लिये जो साधनका और साध्यका सम्बन्ध बताया जा रहा वह तर्कसे बताया जा रहा जैसे जहाँ जहाँ धुवो होता है वहाँ वहाँ अग्नि होती है। जहां अग्नि नहीं होती वहां धुवां भी नहीं होता। यह जो एक युक्ति है यह युक्ति न तो प्रत्यक्षसे जानी जाती है न अनुमानसे, किन्तु तर्कसे जानी जाती है, ऐसे ही इन्द्रियके गुणोंके साथ साधनका सम्बन्ध बताया वह तर्कसे जाना जाता है और न मानो तो अप्रमाण्यको उत्पन्न करने वाले दोषकी भी प्रतीति कैसे होगी? वहां पर भी हम यह कहेंगे कि इन्द्रिय दोषके साथ साधनका सम्बन्ध क्या प्रत्यक्षसे जाना जाता है कि अनुमानसे? तो दोष भी सिद्ध नहीं कर सकते।

इन्द्रियोंमें गुण और दोष दोनोंकी सिद्धि—प्रकरण यह चल रहा है कि इन्द्रियके यदि गुण हों, नैर्मल्य हो तो ज्ञान सही होता है और इन्द्रियमें दोष हों तो ज्ञान मिथ्या होता है। इस प्रकरणमें यह शङ्काकार दोषकी सत्ता तो मानता है, गुणों की सत्ता नहीं मानता और उसका कहना है कि ज्ञानकी प्रमाणता तो स्वयमेव उत्पन्न होती है और अप्रमाणकी उत्पत्ति दोषसे होती है। उसके निराकरणमें यह गुणोंकी सत्ता भी सिद्ध कर रहे हैं। गुण भी होते हैं और अवगुण भी होते हैं। जैसे रागद्वेष मोह आदिक अवगुण होते हैं कि नहीं? होते हैं और शुद्ध ज्ञान ज्योति ज्ञानप्रकाश ये भी कोई गुण हैं कि नहीं? गुण हैं। कोई यह कहे कि शुद्ध जो ज्ञानप्रकाश है वह तो रागद्वेष मोहके अभावकी बात है। कोई गुण खास नहीं है तो यह बात कैसे जचेगी? गुण भी होते हैं दोष भी होते हैं। गुणोंसे प्रमाणताकी उत्पत्ति होती है और दोषोंसे अप्रमाणताकी उत्पत्ति होती है चक्षुसे निर्मलता है तो चीज सही दिखेगी सफेदी है तो साफ और पीली दिजती है यदि वह तो चक्षुमें दोष है। इसी प्रकार जो ज्ञानकी सही उत्पत्ति हुई वह गुणोंसे हुई और मिथ्याज्ञानकी जो उत्पत्ति हुई वह दोषसे हुई।

तुच्छ अभावकी अज्ञेयता—यह कहना ठीक नहीं कि निर्मलता तो दोषों के अभावका नाम है; उसे गुणरूपता क्यों कहेंगे? अरे दोषका अभाव पदार्थमें स्वभावरूप पड़ता है। जहां यह किसीने कहा कि इस कमरेसे एक कलश उठा लावो, कलश वहां था नहीं तो वह कहेगा कि कमरेमें कलश है ही नहीं। अरे तुम अच्छी तरह देख आये?····· हां हां हमने खूब देखा वहां कलशका अभाव है। तो कलश का अभाव भी आंखोंसे दिखता है क्या? किसी चीजकी असत्ता आंखोंसे दिखती है क्या? वह पुरुष इस कमरेमें आकर चौकी, अल्मारी, बैन्च, चटाई ये सब देख गया, कलशका अभाव नहीं देख गया। कलशका अभाव देखनेकी चीज नहीं है। देखनेकी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

चीज क्या है कि जिसका अभाव जाना है उसे छोड़कर बाकी चीजका सद्भाव जाना, चौकी, चटाई, भींट आदिक सब कुछ निरखा इस रूप है कलशका अभाव।

किसी पदार्थके अभावकी अन्यपदार्थ सद्भावरूपता— एक पदार्थका अभाव दूसरे पदार्थके सद्भावरूप होता है यह बात बतायी जा रही है। जैसे जीवमें पुद्गलका अभाव है। पुद्गलमें जीवका अभाव क्या है? पुद्गल। पुद्गलका अभाव क्या है? जीव। एक का अभाव दूसरेके सद्भावरूप हुआ करता है। इस बातको अन्य दार्शनिकोंने भी स्वीकार किया है और जैन दर्शन भी मानता है कि अभाव नामक तुच्छ अभाव सर्वथा अभाव नहीं तुच्छ अभाव कुछ चीज नहीं है। अभाव किसी अन्य पदार्थके सद्भावरूप होता है। तो यह कहना कि दोषके अभावका नाम गुण है सो दोषका अभाव तुच्छ अभाव नहीं। जैसे खरगोशके सींग ये तुच्छ अभाव है, मायने किसी पदार्थके सद्भावरूप नहीं है। आकाशके फूल ये किसीके सद्भावरूप नहीं हैं, इस तरहसे अभेद नहीं हुआ करता है। तुच्छ अभावकी सिद्धि नहीं होती, अभाव किसी न किसी पदार्थके सद्भावरूप रहता है। दोषका अभाव मात्र ही गुण कहलाये सो नहीं क्योंकि अभावसे कार्य नहीं होता। कार्य होता है सद्भावसे। तो यथार्थ उपलब्धि दोषके अभावसे नहीं होती किन्तु गुणके सद्भावसे होती है।

तुच्छ अभावसे, असत्से कार्यकी अनुपलब्धि होनेसे मात्र दोषभावसे प्रामाण्यकी अनुत्पत्ति— जैसे कोई कहे कि गधेके सींगका धनुष बना लावो तो कोई बना सकेगा क्या? वह तो असत् है। सर्वथा असत्से कार्य की उपलब्धि नहीं होती। ना दो अर्थोंमें आया करता है जैसे कोई कहे—'अब्राह्मणा भोज्यन्ताम्'—अब्राह्मणोंको खिलावो अब इसके दो अर्थ हैं, ब्राह्मणोंको न खिलावो और ब्राह्मणोंको छोड़कर अन्यको खिलावो ऐसे दो अर्थ हुआ करते हैं न के। एक न का तो बिल्कुल निषेधरूप अर्थ होता है और एक न इसको छोड़कर बाकीके सकेत करनेके अर्थमें होता है। तो जो प्रतिषेध रूप है "न' ऐसा यदि अभावको मानते हो तो ऐसा सर्वथा न से अभाव से कार्य नहीं बनता, दोषके अभावसे कार्य नहीं बनता, किन्तु दोषका–अभाव है गुणों के सद्भावरूप। उससे कार्य बनता है। जैसे कोई कहे कि यह लड़का फेल नहीं हुआ परीक्षामें तो इसका क्या इतना ही अर्थ है पास हुआ। अभावका अर्थ किसीके सद्भावरूप होता है, फेल नहीं हुआ, इसका केवल न से ही अर्थ लिया जाय तो उससे कक्षामें आगे न चढ़ जायगा। आगेकी कक्षामें चढ़ेगा पास मानकर। फेल मानकर सर्वथा अभावरूप मानकर कक्षामें न चढ़ेगा। तो किसीका अभाव अन्यके सद्भावरूप हुआ करता है। यों इन्द्रियमें दोषके सर्वथा अभावसे प्रमाणकी उत्पत्ति नहीं है किन्तु गुणोंके सद्भावसे है।

अभावको अन्यके सद्भावरूप न माननेपर दोषके सद्भावकी भी असिद्धि और, भी देखिये—गुण और दोष ये दोनों परस्पर परिहाररूपसे रहते

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हैं। जहाँ गुण है वहाँ दोष नहीं जहाँ दोष है वहाँ गुण नहीं। इससे यह सिद्ध हुआ कि दोनोंकी सत्ता हुआ करती है। जैसे जहां गर्मी है वहाँ ठंड नहीं, जहाँ ठंड है वहाँ गर्मी नहीं। तो इससे यह सिद्ध हुआ कि ठंड भी वस्तु है और गर्मी भी वस्तु है। अभावका अभाव क्या? सद्भाव। यदि अभाव किसीके सद्भावरूप न माना जाय तो दोषोंकी भी सिद्धि नहीं होती। दोष किसे कहते हैं? नैर्मल्यके अभावका नाम दोष है तो कहते जावो नैर्मल्यका अभाव है, दोष कोई चीज नहीं। अभावको यदि दूसरेके सद्भावरूप न माना जाय तो किसी बातकी सिद्धि नहीं हो सकती। तो जैसे निर्मलता आदिक गुणोंसे भिन्न याने गुणरहित चक्षु है, उससे प्रमाण होनेसे जो स्वत: मानते हो तो नैर्मल्यके अभावसे भिन्न कोई दोष नहीं है तो ऐसे चक्षुवोंसे उत्पन्न हुए अप्रमाणको भी स्वत: मानो, अन्यथा प्रमाण परत: मानो। अतः प्रमाणकी भी उत्पत्ति परसे मानो और अप्रमाणकी भी उत्पत्ति परसे मानो।

प्रामाण्य और अप्रामाण्यकी उत्पत्तिका सम्बन्ध—देखिये! इस शङ्काका सम्बन्ध कहाँ है? सूत्रजीमें बताया कि मतिज्ञान इन्द्रिय और मनके निमित्तसे उत्पन्न होता है तब परसे उत्पन्न हुआ ना? इसपर यह दार्शनिक कह रहा है कि प्रमाणकी उत्पत्ति परसे नहीं होती पर है कहाँ वहाँ? पर तो तब कहलाये जब इन्द्रियमें कोई गुण हो। जैसे इन्द्रियमें दोष है वह चीज है, उससे अप्रमाणकी उत्पत्ति होती है, उसके निराकरणमें कहा जा रहा है कि इन्द्रियमें गुण भी होते और दोष भी होते। मीमाँसकोंने भी कहा है कि अप्रमाण्य तीन तरहका होता है—एक तो मिथ्या याने विपरीत, दूसरा—ज्ञानकी कमी और तीसरा संशय। इन तीनमेंसे दो तो वस्तुरूप हैं मिथ्यात्व और संशय। ज्ञानको होनेको छोड़कर दो तो किसी सद्भावरूप हैं तो उसकी उत्पत्ति दुष्ट कारणोंसे होती है, ऐसा मानते हो तो इसका विरोध हो जायेगा अर्थात् अब तो प्रमाण जैसे स्वत: माना ऐसे ही अप्रमाण भी स्वत, बन गया और यह जो कहा कि गुणोंसे दोषका अभव होता तो इसका अर्थ ही यह है कि गुणोंसे गुण होते हैं और गुणोंसे प्रमाणकी उत्पत्ति होती है तो प्रमाणत्व परत: बन गया।

ज्ञप्ति और उत्पत्तिकी अपेक्षा प्रामाण्यकी स्थिति—ज्ञान और प्रमाण यद्यपि एक ही बात है फिर भी प्रमाणका अर्थ यों समझना कि जब ज्ञानमें ऐसी दृढ़ता सिद्ध की जाती कि यह ज्ञान यथार्थ सही है सो वह प्रमाण है अब उसमें प्रमाणताका आरोप करना यह परसे हुआ करता है और ज्ञप्तिकी दशामें प्रमाणता स्वत: होती है और उत्पत्तिकी दृष्टिसे अनभ्यासमें स्वयं व परसे उत्पत्ति होती है। ज्ञानका स्वरूप चल रहा है पहिले तो ज्ञानके स्वरूपका सविस्तार वर्णन किया। ज्ञान वही है जो स्वका और परका प्रकाश कराये। लौकिक ज्ञान तो हो गया पर यह ज्ञान प्रमाण रूप ही है, सत्य है, ऐसा पक्कापन दृढ़ता किस कारणसे सिद्ध हो? यह प्रश्न अब इस प्रसङ्गमें होता है जिसके उत्तरमें ये सब बातें बताती जा रही हैं।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

दृष्टिका चमत्कार - देखिये भैया ! जरा दृष्टि फेरने भरकी जरूरत है कि अपना यह आनन्दमयी आत्मा सबसे निराला अपनी दृष्टिमें आ जाता है। केवल दृष्टिका ही तो फेर है दुनियामें। अपने आपसे दृष्टि फेरी, बाहरमें दृष्टि की कि सारी उलझन, सारी समस्याएँ, विडम्बनाएँ कठिनाईयाँ संसार चक्र सब इसपर गुजरते हैं, और जरा दृष्टि अपनी ओर मोड़कर कुछ अपनेमें निहारा कि समस्त सर्वस्व आनन्द निजी वैभव, सर्व कल्याण मंगल शान्ति सब कुछ अपने आपसे प्राप्त हो जाते हैं। मुक्ति का मार्ग क्या है ? संकटोंसे छूटनेका उपाय क्या है और वह कितना कठिन या सुगम है—इसको केवल एक इस कहावतसे समझिये—'ज दिट्ठा तित पिट्ठा, जित पिट्ठा तित दिट्ठा। यही सारे संकटोंसे छूटनेका उपाय है। आज हमारी पीठ और जिससे हम पीठ किए हुए हैं उसकी ओर हो जाय दृष्टि बस समझिए कि सर्व कल्याण हस्तगत हो गए। धन्य हैं वे योगीश्वर जो अपने ऐसे योगीश्वरोंको क्या प्रामाण्य है यह उनके स्वरूपमें ही निर्णीत है। धन्य हो वह सगति; धन्य हो वह वाणी जिसमें रमकर यह जीव अपने आपके ज्ञानानन्दघन निज अतंस्तत्त्वकी दृष्टि बनाता है।

दृष्टि परिवर्तनकी सुगमता— भैया बाहरमें सब माया, सब मोह जाल, संसारमें रुलानेके साधन हैं। जीते जाइये, जितने वर्ष जीना है। अन्तमें सुध आयगी--ओह ! मेरा कुछ न था। जब सब कुछ छोड़कर जाना पड़ता है तो सबका वियोग होगा ना, ओह ! मेरा कहीं कुछ न था, व्यर्थ ही भ्रम किया, यदि अभी से इस भेद विज्ञानकी भावना बना ली जाय तो कुछ सिद्धि भी हो लेगी। पर जिन्दगीमें यदि भेद भेद विज्ञानकी भावना न थी तो फल यह होगा, अंतमें संक्लेशसे मरण होगा। अरे जिस ओर दृष्टि लगा रहे हैं जिस ओर अपना आकर्षण बनाये हैं वहांसे पीठ करलें, दृष्टि हटा लें। देखिये बहुत छोटी सी बैट्री होती किन्तु उजेला बहुत तेज होता उस बैट्रीका सारा प्रकाश मोड़नेमें कितना विलम्ब लगता है। उसके बल्बका मुख मोड़ दिया, वहांसे प्रकाश हटा, दूसरी ओर गया, उसमें भी विलम्ब है। उसमें भी क्षेत्रका अन्तर है परन्तु अपने आपमें उत्पन्न होने वाली ज्ञान ज्योति ज्ञान दृष्टि, इस दृष्टिको मोड़नेमें न क्षेत्रका अन्तर है कि कुछ प्रदेशोंसे हटना पड़ता है और न इतनी विलम्ब की बात है। यह दृष्टि यह उपयोग बाहरकी ओर है, न करे बाहरकी ओर, भीतरकी ओर, उपयोग दे, तो उसमें कितना विलम्ब लगता है ? कुछ भी तो देर नहीं लगती जैसे अभी कलकत्ताका ध्यान कर रहे बादमें बम्बईका ध्यान करने लगे तो इसमें कुछ विलम्ब लगा क्या ? यों ही समझिये कि बाहरी पदार्थोंसे दृष्टि हटाकर अपने आपके अन्तः स्वरूपकी दृष्टि लगानेमें कितनी देर लगती है, क्या कठिनाई पड़ती है ? पर वासनायें बनी हैं अनादि कालसे और समागम भी मिलता है मोही जनोंका अतएव बाह्य दृष्टि हटाकर अन्तर्दृष्टिक रना कठिन मालूम होता है।

तत्त्वरुचिकी अत्यावश्यकता— अहो ! विषय कषायोंमें प्रवृत्ति तो इसे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सुगम प्रतीत होती, किन्तु अपने आपमें विशुद्ध वृत्ति करना कठिन प्रतीत होती है। जैसे एक दिलका ही बहलावा है मंदिरमें दर्शन करने जानेका। यह भी एक शुभ बहलावा है। दिल बहलाने आये मंदिरमें, पर ज्यादा देर क्यों नहीं टिक सके, अथवा किसी तत्त्ववार्ताके सुननेमें रुचि क्यों नहीं जगती। दर्शन करनेमें भी शुद्धभावसे प्रभु नाम नमस्कार मंत्र क्यों नहीं जपा जाता ? आये, देर नहीं हुई, चलनेकी जल्दी लगी, चले गये क्या बात थी वहां ? वासना दूसरी पड़ी हुई है, दिल बहलावाकी एक रोटीन यह भी है। यों समझिये कि जब यहां तक भी वासना नहीं छूटती, वासना से मन प्रेरित है। तो ऐसे वासना वाले मनमें दृष्टि निजकी कैसे जग सकती है। लेकिन यह पूर्ण निर्णीत है कि जब तक अपने आपके स्वरूपकी दृष्टि न बनेगी। यह आत्मा अपने आपके स्वरूपको न निरखेगा और इस ही कारण जो एक अनुपम अद्भुत् आनन्द होता है उसको न अनुभवेगा तब तक जीवके संकट कभी टल नहीं सकते मोहजालमें क्या रखा है। दूसरे पदार्थोंकी सेवा कर करके अपने आपके आत्मबलको शिथिल कर करके कौनसा लाभ लूट लिया जायगा ? चेतना चाहिए, कुछ अपने आत्माकी भी सुध लेना चाहिए। उस ही आत्माकी चर्चा है। यह आत्मा ज्ञानस्वरूप है। ज्ञान स्वपर प्रकाशक है और ज्ञानमें प्रमाणताकी उत्पत्ति जिसे व्यवहारिक रूप देते हैं परसे होती है और वह जानकारी स्वसे सम्बन्धित जिससे प्रवृत्ति और निवृत्ति होती है वह परिचयकी स्थितिमें स्वतः होती है और अपरिचयकी स्थितिमें उसकी प्रमाणता परसे होती है।

परोक्ष ज्ञानकी परतः उत्पत्ति - हम आप लोगोंका ज्ञान इस समय किसी कारणको पाकर उत्पन्न होता है। यद्यपि आत्माका स्वभाव ज्ञान है तथापि इस कर्म सहित अवस्थामें हम आप जिन जीवोंकी स्थिति ऐसी है कि इन्द्रिय और मनका निमित्त पाकर ज्ञान उत्पन्न होता है, तब ज्ञानकी उत्पत्ति परसे हुई। यद्यपि ज्ञानका उपादान आत्मा ही है पर यहाँ सर्वतोमुखी निर्णय किया जा रहा है। दर्शन शास्त्रका प्रकरण है। यह ज्ञान इस पर निमित्तके बिना नहीं हो सकता अतएव ज्ञानकी उत्पत्ति परसे मानी गई है और ज्ञान है सो प्रमाण है, प्रमाणसे भिन्न ज्ञान कुछ नहीं है। तब प्रमाणकी भी उत्पत्ति परसे हुई।

ज्ञानकी उत्पत्ति परतः होनेपर भी उसमें प्रामाण्य स्वतः होनेकीआशङ्का —स्वतः प्रामाण्यवादी शङ्काकार यह कह रहा है कि ज्ञानकी उत्पत्ति चाहे परसे हो जाय, पर ज्ञानमें जो प्रमाणता आमी है उस प्रमाणताकी उत्पत्ति परसे नहीं होती वह स्वतः ही है, क्योंकि प्रामाण्यका नाम है पदार्थ जैसा है उस प्रकारसे प्रकाश करदे, जानकारी बना दे, इसीका नाम है प्रमाण। सो चक्षु आदिक इन्द्रियसे ज्ञानकी तो उत्पत्ति हो गई और अब प्रामाण्यकी उत्पत्ति नहीं हो सकी। प्रामाण्यकी उत्पत्ति इसके बाद इन्द्रियके गुण आदिकसे मानते हो जैन लोगो ! उनसे कह रहा है शङ्का-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

कार। तो ज्ञानकी तो उत्पत्ति हो गई चक्षु आदिक सामग्रीसे फिर भी अभी प्रामाण्य की उत्पत्ति नहीं हुई है। तो जरा ज्ञानका स्वरूप तो बताओ कि प्रमाण तो अभी बनता नहीं और ज्ञान कहलाने लगे ऐसा ज्ञान भी कुछ है क्या ? अरे ज्ञानरूपताको छोड़कर प्रमाणका स्वरूप और कुछ नहीं देखा जाता और प्रमाणरूपताको छोड़कर ज्ञानका स्वरूप और कुछ नहीं देखा जाता जिससे तुम यह मान सको कि ज्ञानकी तो उत्पत्ति हो गयी पर अभी प्रमाण उत्पन्न नहीं हुआ। प्रामाण्यकी उत्पत्ति इसके उत्तर कालमें मानी जायगी। ऐसा नहीं है कि जैसे भींट तो पहिले बन गयी, उसपर चित्रकारी बादमें लिखी जायगी। ऐसा यहाँ नहीं है कि ज्ञान तो उत्पन्न हो गया उसकी प्रमाणता बादमें उत्पन्न हो। ज्ञान प्रामाण्यस्वरूपको लिए हुए है।

ज्ञानकी भांति प्रामाण्यकी भी उत्पत्ति परसे हो सकनेमें शङ्का समाधान शङ्काकार कह रहा है और शङ्काकारकी शङ्का कुछ ठीक जच रही होगी उसका यह कहना है कि ज्ञान तो उत्पन्न हो जाता पहिले और उसकी प्रमाणता होगी बादमें, तो ज्ञानकी उत्पत्तिके साधन तो हुए और कुछ, और प्रामाण्यकी उत्पत्तिके साधन हुए और कुछ, तो विरुद्ध धर्म होनेके कारण और कारणभेद होनेके कारण ज्ञान जुदी चीज रही और प्रामाण्य जुदी चीज रही, फिर ज्ञानकी प्रमाणता यह कह ही कैसे सकते ? शङ्काकार यह कह रहा है। समाधान उसका इतना ही है कि ज्ञान की उत्पत्ति और प्रमाणकी उत्पत्तिका भिन्न-भिन्न समय नहीं है। जिस कालमें ज्ञान उत्पन्न होता उसी कालमें प्रमाणता भी बन गयी और जो ज्ञानके कारण हैं चक्षु आदिक वे ही प्रमाणके कारण हैं। सो प्रामाण्यकी भी ज्ञानकी भांति उत्पत्ति परसे हुई।

प्रामाण्य स्वतः उत्पन्न होनेकी शङ्काका एक युक्ति द्वारा समर्थन और समाधान अब फिर शङ्काकार कह रहा है। ध्यानसे सुनने लायक शङ्का है। देखिये ! प्रामाण्य नाम उसका है जो पदार्थको उस ही प्रकार जना देवे, ऐसी शक्ति ! पदार्थ जैसा है उसको उस ही प्रकार जानकारी करा दे, ऐसी शक्तिका नाम है प्रामाण्य। और शक्ति भावोंमें स्वतः ही उत्पन्न होती है। उत्पादक कारणोंके आधीन नहीं है। प्रमाणकी प्रमाणता स्वयमेव होती है अन्य किसी कारणोंसे नहीं होती। जैसे बालूमें तेल नहीं है तो कितने ही कोल्हूवोंमें पेला जाय पर उसमें तेलकी उत्पत्ति नहीं हो सकती। ऐसे ही ज्ञानमें प्रामाण्य स्वयं मौजूद है अतएव प्रामाण्य स्वयं होता है। और, भी विशेष समझिये कि कार्यमें रहने वाले धर्म कारणमें होते हैं कोई, तो वह उस कारणसे उत्पन्न होता समझिये, पर जो कारणमें धर्म नहीं है और धर्म उत्पन्न होता है कार्यमें, तो वह धर्म कार्यमें स्वतः उत्पन्न होता है। जैसे मिट्टीमें रूप है, यदि मिट्टीके पिण्डका घड़ा उत्पन्न होता तो वह भी मिट्टीसे ही आया लेकिन उस मिट्टीसे घड़ा जब बन चुका तो घड़ा बन चुकनेपर घड़ेमें जल धरनेकी जो शक्ति है वह

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

क्या उस मिट्टी, कुम्हार, दण्ड, चक्र आदिकसे आयी है ? घटकी उत्पत्तिमें तो वे कारण बने, पर घड़ेमें पानी रखनेकी जो शक्ति आयी है वह घड़ेमें स्वयं आई है, कारणसे नहीं आयी है, इसी प्रकार ज्ञान तो परसे उत्पन्न होने लगा, ठीक है, पर ज्ञानमें जो प्रमाणता आई है वह परसे नहीं आयी, किन्तु स्वयमेव आयी है। कोई भी भाव अपने स्वरूपकी प्राप्तिमें कारणोंकी अपेक्षा रखता है, परन्तु उनका स्वरूप बन जाय फिर अपना कार्य करनेमें उसकी प्रवृत्ति स्वयमेव होती है। ये सब शङ्काएँ इस भ्रमपर निर्भर हैं कि ज्ञान और प्रमाणता इन दोनोंको अलग अलग मान रखा है। ज्ञान ही प्रमाण स्वरूप है। ज्ञानकी उत्पत्ति परसे हुई इसका अर्थ है प्रमाणकी उत्पत्ति परसे हुई। और देखिये लोग कहते भी हैं कि हमारे चक्षु जब दोषवान थे तो पदार्थ हमें उल्टा दिखते थे और अब हमारी इन्द्रियमें निर्मलता आयी, दोष मिटा तो हमको पदार्थ सही मालूम होने लगे। तो पदार्थका सही मालूम होनेमें कुछ कारण बना कि नहीं, बस वही कहलाया पर। यों प्रमाणकी उत्पत्ति परसे हुई।

ज्ञान, प्रामाण्य और उनकी उत्पत्ति विधि ज्ञान और प्रामाण्यके सम्बन्धमें कलकी तीन बातोंका स्मरण कर लेना, जो कल कहा गया था कि इस ज्ञानके बर्तनमें तीन बातें गुजरती हैं—ज्ञान स्वसम्वेदी है, वह अपने आप ही अपने आपको जानता है। जब ज्ञान उत्पन्न होता है तो अपने आपको जानता हुआ, चाहे उसपर उपयोग दें या न दें जो बात खुदके प्रदेशोंपर गुजरती है वह तो विदित होकर गुजरी, अनुभूत होकर गुजरी, चाहे हम अपने उपयोगको विदित करें या न करें। जब ज्ञानका काम केवल जानन है तो जाननका गुजरना वेदनरूपसे होता है। यों मूलमें ज्ञान स्वसम्वेदी है पर वह ज्ञान जिस पदार्थको जानता है उस पदार्थका निर्णय, यह ज्ञान सही है यह पदार्थ यों ही है इस प्रकारकी प्रमाणताका निर्णय परिचित दशामें तो स्वयमेव हो जाता। हम रोज मंदिर आते हैं और मंदिरकी सारी चीजें निरखते हैं यह खम्भा है, यह चौकी है, वेदी है, प्रतिमा है, आते ही झट समझ लेते हैं और जो कुछ करना होता है निशंक होकर अपनी प्रवृत्ति करते हैं। किसी अन्य शहरके किसी अपरिचित स्थानमें पहुंचे, वहाँ मंदिरमें जायें तो कैसा देखकर सोचकर जाते हैं, केसी नई निगरानी सी बनाकर देखते हैं तो अभ्यास दशामें होने वाली जानकारीमें और अनभ्यास दशामें होने वाली जानकारीमें कुछ अन्तर है। यही बात प्रमाण और अप्रमाणकी है। अनभ्यास दशामें प्रामाण्य परसे होता है और अभ्यास दशामें प्रामाण्य स्वतः होता है। यह सिद्धान्त रखा जानेपर कि प्रमाणमें प्रमाणता परसे होती है इसके लिये हेतु दिया यथार्थ उपलब्धि होनेके कारण। जब पदार्थकी हमें सही रूपमें जानकारी हुई तो उसमें कोई कहीं कारण होगा।

केवल जानकारी मात्र होनेसे प्रामाण्य स्वतः माननेपर शङ्का समाधान ज्ञान और प्रामाण्यके सम्बन्धमें शङ्काकारने यह बात रखी थी कि भाई

Report any errors at vikasnd@gmail.com

यथार्थ उपलब्धि कोई नई बात नहीं है। २ तरहकी उपलब्धि होती हैं एक यथार्थ जानकारी और एक अयथार्थ जानकारी इन दोनोंको छोड़कर कोई और जानकारी हो फिर उसमें यथार्थता जोड़ी जाय तो वह हेतु तुम्हारा सही है, किन्तु यथार्थ और अयथार्थको छोड़कर उपलब्धि होना और कुछ है ही नहीं ? उत्तरमें यों समझना चाहिये कि सामान्य विशेष निष्ठ हुआ करता है। यथार्थ जानकारीमें या अयथार्थ जानकारीमें जो भी सामाण्य है वह विशेष निष्ठ होता है। जैसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र चार प्रकारके मनुष्य हैं तो कोई कहे कि मनुष्य सामान्य तो कुछ चीज ही नहीं। अरे मनुष्य सामान्य अलगसे कुछ चीज नहीं किन्तु उस चार वर्णोंकी व्यक्तियोंमें जो अनुगत प्रत्ययको लिये हुए बोध है उसमें मनुष्य सामान्य बराबर परखा जा रहा है। तो निर्विशेष सामान्य नहीं हुआ करता। पर समस्त पदार्थोंमें यह यह है, यह भी है ऐसा जो एक अन्वय रूप बोध होता है उसमें सामान्य परख लिया जाता है। जैसे गाय कोई नीली है, पीली है, काली है, सफेद है, लाल है। कोई छोटी सींगकी है कोई बड़ी सींगकी है, अनेक प्रकारकी हैं पर उन सब गायोंमें यह भी गाय हैं, यह भी गाय है, ऐसा जो गोत्व सामान्य है वह भी कुछ तत्व है या नहीं ? सामान्य विशेषमें रहा करता है और फिर जो इस लोकको प्रमाणित करना चाहें उनको दोनों बातें परसे माननी होंगी। प्रमाणता भी परसे होती है और अप्रमाणता भी परसे होती है। उत्पत्तिकी अपेक्षा।

प्रामाण्य और अप्रामाण्यकी उत्पत्तिविधि—शङ्काकारने यहाँ यह कहा कि प्रामाण्य तो स्वयं होता और अप्रामाणता परसे होती है। यदि अप्रमाणता परस है तो प्रमाणता भी परसे है अन्यथा, अप्रामाण्य भी स्वतः है और प्रामाण्य भी स्वतः है। ज्ञानमें अगर स्वसम्वेदन आया तो वह भी स्वयं आया। तो ज्ञानमें जो मिथ्यापन आया तो वह भी ज्ञानमें स्वयं आया। यदि ज्ञानका मिथ्यापन दोषसे मानते हो तो ज्ञानमें सहीपन गुणोंसे मान लो। गुणदोषरहित इन्द्रिय सामान्य कुछ नहीं है। इन्द्रिय है तो या तो गुणवाली होगी या दोषवाली होगी। गुणवाली इन्द्रियसे जो प्रमाण ज्ञान उत्पन्न होता वह परतः कहलाया और दोषवाली इन्द्रियसे जो अप्रमाणता उत्पन्न हुई वह भी परतः कहलायी। और, जो तुम्हारा यह कहना है शङ्काकारसे कहा जा रहा है कि कभी निर्मल भी इन्द्रिय पदार्थको उल्टा जान जाती है और कभी ललाई लिए हुए भी चक्षु पदार्थको सही जान जाते हैं। फिर गुण दोषका नियम कैसे बना ? तो इसमें भी जानने वालेका ही दोष है। किसी भी अन्य कारणसे किसी पदार्थमें किसी पदार्थका अभिप्राय कर लिया गया, भाई दोष तो अनेक होते हैं, केवल एक आँखकी ललाईको जाना इतने ही तो दोष नहीं, वात, पित्त, कफ आदिकके विकार भी कितने ही प्रकारके हैं कि इन्द्रियमें हमारी समझमें भी न आ रहे हों ऐसे भी दोष आ जाया करते हैं। गुण उत्पन्न हुआ तभी प्रामाण्य आया। ज्ञान उत्पन्न होनेके बाद फिर ज्ञानकी प्रमाणताके लिए गुणकी अपेक्षा की जाय, ऐसा तो नहीं माना। भाई !

ज्ञान हुआ तो उसीके साथ या प्रमाण बन गया या अप्रमाण । तो यों हम आप सब लोगोंका छद्मस्थ अवस्थामें ज्ञान भी परसे हुआ और प्रमाण भी परसे उत्पन्न हुआ ।

उपादानदृष्टिसे कार्यकी उत्पत्तिका स्वतः ही विधान— भैया ! यहाँ सुध रखना चाहिए कि उपादान दृष्टिसे ज्ञान आत्मासे ही उत्पन्न होता है इन्द्रियसे उत्पन्न नहीं होता । प्रत्येक पदार्थ अपने आपके स्वरूपमें ही अपना कार्य उत्पन्न करते हैं, किसी परका स्वरूप लेकर कार्य उत्पन्न नहीं किया करते । जैसे मिट्टीसे घड़ा बना तो उसमें बाहरी कारण कितने ही थे – कुम्हार भी, चक्र भी, दण्ड भी । लेकिन घड़ा जो बना वह मिट्टीके ही अवयवोंसे बना कुम्हारसे, चक्रसे या दण्डके किसी हिस्सेसे नहीं बना । प्रत्येक कार्य जिस पदार्थकी अवस्थायें होती हैं उस ही पदार्थसे उत्पन्न हुआ करती है । हाँ, उस उत्पत्तिमें पर पदार्थ निमित्त भले ही रहे आयें । यहाँ भी जितने कार्य हम आपको नजर आते हैं उसमें भी उपादान निमित्तकी बराबर विधि चल रही है । यह चौकी बनी तो बढ़ईने बनाया, बसूला आदिक हथियारोंने बनाया तिसपर भी चौकी न बढ़ईके प्रदेशोंमें बनी न बसूला आदिक हथियारोंमें बनी, किन्तु काठमें बनी । काठकी ही ऐसी अवस्था हुई । तो चौकीके निर्माणमें उपादान दृष्टिसे यद्यपि यह अवस्था परमें नहीं हुई, स्वयंसे हुई, लेकिन निमित्त पाये बिना बढ़ई और उस प्रकारका व्यापार हुए बिना चौकीका निर्माण हो गया था क्या ? उसी दृष्टिसे कहा जाता कि चौकीकी उत्पत्ति बढ़ई आदिकसे हुई है ।

उपादानदृष्टिसे ज्ञान और प्रामाण्यकी उत्पत्तिका स्वतः ही विधान— उक्त उदाहरणकी भाँति ज्ञानकी भी बात है । ज्ञान यद्यपि आत्माके ज्ञानस्वभावसे ही उत्पन्न होता है पर पदार्थोंके स्वभावसे नहीं । ज्ञानमय आत्माकी परिणति ही ज्ञान है लेकिन आज जो संसार अवस्थामें जीवोंकी अवस्थाएँ हैं उन अवस्थाओंमें ज्ञान आवृत है, ज्ञान अविकसित है, उसका विकास इन्द्रिय और मनका निमित्त पाकर बन पाया है तो निमित्त दृष्टिसे उत्पत्ति परसे हुई उपादान दृष्टिसे उत्पत्ति स्वयंको हुई । एक बालक स्कूलमें पढ़ता है उसके अध्ययनके लिए उसके ज्ञानविकासके लिए गुरुका शिक्षण चाहिए, पुस्तक चाहिए, कापी, पेन्सिल, कलम आदिक चाहिए, सब साधनोंको वह जुटाता है, पर बालकमें जो ज्ञानका विकास हुआ वह क्या कागज, पेन्सिल, कलम दवात आदिक चीजोंसे निकलकर हुआ ? ये सब तो अजीव हैं, जड़ हैं, जड़से ज्ञान आता ही नहीं है, और गुरुका ज्ञान कोई आनेकी चीज है ? गुरुका ज्ञान गुरुके आत्मामें ही परिसमाप्त होता है । गुरुका ज्ञान यदि गुरुसे निकलकर लड़कोंमें जाने लगे तो कुछ ही दिनोंमें वह गुरु तो ज्ञानशून्य हो जायगा, क्योंकि जहाँ ४०–५० लड़कोंको ज्ञान दिया वहाँ ज्ञान खतम ! प्रत्येक पदार्थकी अवस्था उस ही पदार्थमें उत्पन्न होती है, पर तो निमित्त मात्र है ।

वचन व्यवहारके समय उपादान निमित्तका तथ्य—इस समय भी हम

कुछ बोल रहे हैं, कुछ सोचकर बोल रहे हैं। जो भी चेष्टायें हम कर रहे हैं, वह स्वयं कर रहे हैं, पर इस प्रकारकी चेष्टायें हम ऐसे श्रोताजनोंके वातावरणका निमित्त पाकर कर रहे हैं, तो यहाँ हमारी चेष्टा उपादानसे तो हममें ही स्वयंमें स्वतः हो रही है और निमित्त दृष्टिसे इतने श्रोतावोंका निमित्त पाकर एक ऐसा अंतरंगमें आशय बनाकर कि कुछ कहना चाहिए चेष्टा हो रही है इसी प्रकार सुनने वाले सभी लोग जो कुछ समझ रहें हैं वह सब वे अपने आपके ही प्रदेशोंमें अपनी ही ज्ञान वृत्तिसे अपने ही आपमें परिणम कर रहे हैं। हां उसमें निमित्त ये वचन भले ही पड़ें, पर जो कुछ अव था जिस पदार्थमें गुजरती है वह उस होसे उत्पन्न होती है। यह है निश्चय दृष्टिका कथन और वह बनी कैसे उसका कारण कलाप क्या है, ऐसी अवस्था बनानेके लिये हमें प्रयत्न कहां कहां का करना चाहिए. यह सब निमित्त दृष्टिसे बात विदित होती है। तो ज्ञानकी उत्पत्ति निमित्त दृष्टिसे परसे बतायी गई है और उपादान दृष्टिसे स्वतः बतायी गई है। अब ज्ञानमें जो जानकारी है, जाननरूप क्रिया है और ऐसा जानन, जिसकी वजहसे हम लगने योग्य बातमें लग जायें और हटने योग्य बातसे हट जायें, यह सब परिचित दशामें स्वतः होता है और अपरिचित दशामें परतः होता है।

ज्ञानके फल और उनमे निर्णय ज्ञानके ४ फल हैं प्रथम तो ज्ञानकारी हो जाना, दूसरा जो ग्रहण करने योग्य बात है जिस तरह है उसे ग्रहण करलें। तीसरा फल है– जो छोड़ने योग्य वस्तु है उसे छोड़ दें. और चौथा फल है कि न छोड़ना न ग्रहण करना, किन्तु उपेक्षाभाव रखे रहना देख लो जाननमें ये चार बातें हुआ करती हैं कि नहीं। इनमेंसे जो पहिला फल है जानकारी हो जाना वह तो इसका स्वरूप है. निश्चयरूप फल है और जो ग्रहण करने योग्यको छोड़ दे ये जो दो फल हैं ये कुछ रागांशको लेकर होते हैं। ज्ञानके साथ यदि किसी प्रकारका राग है तो ग्रहण करने योग्यको ग्रहण कर लेता और छोड़ने योग्यको छोड़ देता तो जब विवेक और अनुराग इन दोनोंका संगम होता है तब ऐसी स्थिति बनती है कि उपादानको ग्रहण किया और हेयको छोड़ने लगे। जब अनुराग नहीं रहता, रागद्वेषकी वृत्ति नहीं रहती तो जानकारी करके एक उपेक्षा कर दी जाती है। न लगना न हटना केवल जानकारी रह गई। और ग्रहण हो जाना छोड़ देना यह उसमें बात नहीं होती। तो ये सब ज्ञानकी वृत्तियाँ ज्ञानकी ऐसी किस्में अनेक अनेक कारणोंके होने पर हुआ करती हैं। उस ही ज्ञानकी प्रमाणताके सम्बन्धमें यहाँ वर्णन चल रहा है। ज्ञानकी प्रमाणता परिचय वाली जगहमें स्वयं होता है यह सही बात है और ऐसे न परिचय वाली जगहमें कुछ और और साधनोंसे परख होती है कि हम रा यह ज्ञान यथार्थ है।

प्रमाण और प्रामाण्यकी विधिपर शङ्का समाधान शङ्काकार दार्शनिक यह मानता है कि जो तत्त्व कारणमें पड़ा हो उससे होने वाले कार्योंकी उत्पत्ति तो

http://sahjanandvarnishastra.org/

परसे मानी जायगी और जो तत्त्व कारणमें न पड़ा हो और कार्यमें ही दीखे तो उस की उत्पत्ति स्वतः मानी जायगी। जैसे मिट्टीसे घड़ा बना तो घड़ेमें भी रूप है, और मिट्टीमें भी वह रूप था, तो चूंकि वह मिट्टीमें भी रूप था अतः घड़ेमें रूपकी उत्पत्ति मिट्टी कारणसे हुई लेकिन घड़ा बननेपर जो घड़ेमें पानीके धारणकी शक्ति है वह उस मिट्टीमें न थी, अतएव घड़ेमें जल धारण शक्ति स्वयमेव हुई है इसी प्रकार ज्ञानकी उत्पत्ति जिन कारणोंसे हुई है उन कारणोंसे हो गयी ठीक है पर ज्ञान होनेपर ज्ञानमें जो प्रमाणता आयी वह प्रमाणता ज्ञानके कारयोंमें नहीं मिलती। अतएव प्र माण्य स्वतः होता है। इस आशङ्काके समाधानमें कहते हैं कि ऐसा मानने वालोंके यहाँ आत्मामें अविद्यमान जो ज्ञानरूपता है वह इन्द्रिय कैसे बन जायगी क्योंकि आत्मा में और इन्द्रियमें भी ज्ञानरूपता नहीं है। इस शङ्काकारके यहाँ आत्मा ज्ञानस्वरूप नहीं है ज्ञानका सम्बन्ध होता है तो आत्मामें अविद्यामान ज्ञानकी उत्पत्त होती मानी हैं। सो जब आत्मामें अविद्यमान होनेपर भी ज्ञानकी उत्पत्ति इन्द्रियसे मान ली तो अर्थको ग्रहण करनेकी शक्तिरूप प्रामाण्य यदि गुण वाली इन्द्रियसे मान लिया जाय तो इसमें कौनसा अपराध है ? ये समस्त शक्तियां अपने आधारभूत ज्ञानोंसे भिन्न नहीं है। ज्ञान यदि परसे उत्पन्न हुआ तो तुरन्त ही यह भी कहना होगा कि उसमें प्रामाण्य भी परसे उत्पन्न होता तो जो ज्ञान होता है उस ज्ञानमें आगे होने वाले ज्ञानसे प्रमाणता न मानें स्वतः मानें तो अप्रामाण्यमें भी स्वतः मान लो। ज्ञान हुआ वह ज्ञान यदि पर कारणोंकी अपेक्षा रखा करता है तो ज्ञानकी प्रमाणता भी अपेक्षा रखकर हुई और जहाँ नहीं हुई वहाँ प्रमाणता स्वतः हुई।

परोक्ष ज्ञानोंके प्रामाण्यके निर्णयका प्रसङ्ग प्रभुका ज्ञान कारणोंकी अपेक्षा नहीं रखता तो उसका प्रामाण्य भी स्वतः है लेकिन प्रभुके ज्ञानकी बात नहीं कह रहे। प्रभुका ज्ञान न प्रमाण है न अप्रमाण। इस क्षेत्रमें देखिये – प्रमाणकी खोज वहां की जाती जिस जगहमें अप्रमाणकी भी सम्भावना हो। प्रभुके ज्ञानमें अप्रामाण्यकी एक क्षणको भी सम्भावना नहीं है फिर वहां प्रामाण्यका क्या निर्णय करना, प्रामाण्यका निर्णय तो वहां किया जाता है जहां सम्वाद है और विसम्वाद भी है। संवाद विसंवादकी घटनायें यहां आप हम सबके चलती हैं सो लौकिक जनोंसे मुमुक्षु जनों तक प्रामाण्य अप्रामाण्यकी चर्चा चल रही है।

प्रमाणसे प्रामाण्यकी भिन्नता न होनेसे प्रमाणवत् प्रामाण्यकी उत्पत्ति शङ्काकारने जो यह कहा था कि पदार्थकी उत्पत्ति तो परसे हुई किन्तु पदार्थमें जो अपने कार्यमें प्रवृत्ति होती है वह स्वयमेव होती है। जैसे घड़ेकी उत्पत्ति तो मिट्टी, कुम्हार आदिकसे हुई किन्तु घड़ेमें जल भरे रहनेकी शक्ति कुम्हारसे या उस मिट्टीसे नहीं हुई, वह घडेमें स्वयं हुई है। ऐसा कहना और इस प्रसङ्गमें घटाना यह कथन मात्र है, क्योंकि प्रामाण्यका अर्थ है क्या ? जैसा पदार्थ अवस्थित है उस ही रूपसे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

पदार्थको जान लेना यह प्रमाण है और जब ऐसा प्रमाणका स्वरूप बन गया तो प्रमाणका स्वकार्य क्या है ऐसा जानना, ऐसी पक्काई रखना और उसके फलमें ग्रहण और त्याग करना इस कार्यमें फिर किसी अन्य कारणकी अपेक्षा नहीं, किन्तु जिस कारणसे ज्ञान बना उसी कारणसे प्रामाण्य बना और उसका कार्य बना, कोई भिन्न कारण हम नहीं मानते। जो प्रमाणकी उत्पत्तिका कारण है वही प्रामाण्यकी उत्पत्ति का कारण है। यों समझ लीजिए जो ज्ञान उत्पन्न होनेका कारण है वही ज्ञानकी पक्काईका निर्णय करनेमें भी कारण है और फिर इस शङ्काका के यहाँ विज्ञान तो उत्पत्तिके बादमें ही नष्ट हो जाता है अथवा हो जाता है सभी का। जिस किसी भी पदार्थका ज्ञान हो वह ज्ञान आगे ठहरता कहां है ? फिर अन्यका ज्ञान करने लगता है तो उत्पत्तिके बाद ही विनाश है फिर उसकी प्रवृत्ति स्वयमेव कैसे हुई ? विज्ञान ही नहीं रहा।

यथार्थ ज्ञप्तिको प्रमाणकार्य माननेपर प्रामाण्यकी स्वतः उत्पत्ति माननेकी अनियमत।– शङ्काकारने जो यह कहा कि प्रमाणकी उत्पत्ति तो परसे है मगर प्रमाणमें जो पक्काई आती वह स्वतः होती है। प्रमाणका कार्य स्वतः होता है, तो उनसे पूछा जाता है कि जैसा पदार्थ है वैसा जान लिया, इतना प्रमाणका काम है क्या ? या यह प्रमाण है ऐसा दृढ़ निर्णय रखना, यह प्रमाणका कार्य है ? यदि कहो कि प्रमाणका कार्य यह है कि जैसा पदार्थ है वैसा जान लिया। अरे तो इसीका ही नाम तो प्रमाण है। प्रमाणका कार्य भिन्न और हुआ क्या ? प्रमाणका कार्य जो यह अर्थ परिज्ञान मानेंगे तो इसका अर्थ है प्रमाणने अपने आपको किया। जब प्रमाण परसे बना तो प्रामाण्य भी परसे बना। कोई सही ज्ञान हो यह चीकी है, यह ज्ञान तो प्रमाण कहलाता और यह ज्ञान सही ही है, ऐसी जो पक्कायत ज्ञानमें बसी हुई है इसका नाम है प्रामाण्य। तो वह प्रामाण्य प्रमाणरूप है भिन्न चीज नहीं, जैसे ज्ञान और ज्ञानत्व, मनुष्य और मनुष्यत्व। ये कोई न्यारी चीज नहीं हैं। मनुष्य कहो तो एक मनुष्यका बोध हुआ और मनुष्यत्व कहो तो मनुष्यकी विशेषताका बोध हुआ। ऐसे ही प्रमाण और प्रामाण्य ये कोई न्यारी चीज नहीं हैं। प्रमाण यदि निर्दोष निर्मलता आदिक गुणवाली इन्द्रियोंसे उत्पन्न होता है तो प्रामाण्य भी इसी तरह मान लीजिये। प्रमाणसे माना कि परसे हुआ और प्रामाण्यको माना कि स्वतः हुआ यह बात ठीक नहीं है। यह बात कही जा रही है और जो दृष्टान्त देते हो कि घड़ा तो परसे उत्पन्न हुआ पर जल धारणकी शक्ति घड़ेमें परसे नहीं हुई, अरे तो जिन अवयवों से घड़ा बना वे ही अवयव तो सब शक्तिके कारण हैं। उनका भी रूप घड़ेके रूपमें कर दिया। पर जितनी भी बातें बनेंगी किसी भी पर्याय बनकर वे सब शक्तियाँ उसके अवयवोंमें हैं, द्रव्यमें हैं, पिण्डमें हैं। तो यदि यथार्थ परिज्ञानका नाम प्रमाणका कार्य है तो प्रमाणने अपने आपको किया यह ही समझना चाहिए।

यथार्थताके दृढ़ निर्णयको प्रामाण्य माननेपर प्रामाण्यकी समस्याका

http://sahjanandvarnishastra.org/

समाधान यदि प्रमाणका कार्य यह मानते हो कि यह प्रमाण है ऐसा निर्णय निश्चय रखना सो प्रामाण्य है अर्थात् अपने आपके ज्ञानमें यह सही है इस प्रकारका जो अपने आपका परिज्ञान है, उसका नाम प्रामाण्य है। तो कहते हैं कि वह तो स्वरूप है उत्पत्ति क्यों मानते। और फिर कभी कभी तो जान रहे हैं गलत और भीतर में यह निर्णय बन जाता कि यह ठीक है और कभी कभी जान तो रहे हैं ठीक और निर्णय यह बन जाता है कि यह कुछ गलत मालूम होता है तो इसका जो निश्चय है वह अपने आपकी कल्पनामें न बनेगा किन्तु युक्तियोंसे, साधनोंसे, प्रमाणसे यह सब कुछ जानकर कि चूंकि इसकी इन्द्रियां निर्दोष हैं, फासला भी सही है, सारी बातें जाननेसे माना जायगा कि यह ज्ञान प्रमाण है। प्रामाण्यका निर्णय तो युक्तियोंसे, बहु सम्मत मंतव्योंसे बनेगा, केवल एकका जिसका ज्ञान है उसकी कल्पनासे न बनेगा।

व्यवहार्य ज्ञानोंमें प्रामाण्य अप्रामाण्यके निर्णयकी आवश्यकता— सिद्धान्तमें ज्ञानके ५ भेद माने हैं मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान। मन, पर्यय ज्ञान, और केवल ज्ञान। इन ५ मेंसे तीन तो परमार्थ प्रत्यक्ष हैं. सांव्यवहारिक नहीं किन्तु इन्द्रियकी सहायताके बिना केवल अपने आत्माकी उत्पत्ति होना प्रत्यक्ष प्रमाण है और उन तीनमें भी केवल ज्ञान सकल प्रत्यक्ष है और अवधिज्ञान मन पर्यय ज्ञान एक देश प्रत्यक्ष है। वहां की चर्चा इस समय नहीं कर रहे हैं किन्तु जो परोक्ष ज्ञान है, मतिज्ञान है, श्रुतज्ञान है, जिसमें प्रमाणताका और अप्रमाणताका विसम्वाद रहा करता है वहां की यह चर्चा चल रही है। हमारे इन ज्ञानोंमें जो प्रमाणभूत ज्ञान बनता है वह ज्ञान तब बनता है जब हमारा मन इन्द्रिय अन्य साधन ये सब गुणवान हो और जब ये साधन सदोष हुए तो अन्य स्वरूपका अन्य ज्ञान होता है। जैसे आँखमें जिस रङ्गका चश्मा लगाया उससे पदार्थका एक ज्ञान सामान्य तो है पर उसकी जो विशेषताएँ हैं उनमें अन्तर आ जायगा। है सफेद जान लिया पीला। तो जो उसमें विशेष निर्णय हुआ वह जैसे यहांके साधनोंके आधीन है, जैसा चश्मा लगा उस रङ्ग का परिज्ञान हुआ, इसी प्रकार प्रत्येक ज्ञानमें जो एक ज्ञान सामान्य है, इतने मात्र का परिज्ञान वह तो सबमें है। चाहे झूठा ज्ञान हो चाहे सच्चा ज्ञान हो, है, इतना मात्र तो परिज्ञान हुआ, पर किस स्वरूपमें है, क्या उसका असाधारण गुण है? अनेक विशेषतावोंको लेकर जो ज्ञान होता उसमें निर्णय किया जाता कि यह ज्ञान प्रमाण है या अप्रमाण। न तो ज्ञान सामान्यका निर्णय करना है और न प्रभुके ज्ञान का निर्णय करना है कि वह प्रमाण है या अप्रमाण, किन्तु जिसके ज्ञानमें नाना विध विशेषताएँ आया करती हैं और वे विशेषताएँ भी ज्ञानमें स्थिर नहीं रहतीं। जहां बदल बदलकर इन्द्रियज ज्ञान होता रहता है उस ज्ञानमें प्रमाणता और अप्रमाणता की बात कही जा रही है।

ज्ञानमें स्वसंवेदनका स्वभाव—यों तो ज्ञानके पहले पर्तमें स्वका सम्वेदन

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सबमें होता है तब ज्ञान बनता है। यहां स्वके मायने आत्मा नहीं, किन्तु जो जान रहा है वही ज्ञान। प्रत्येक प्राणी चाहे वह संज्ञी हो या असंज्ञी, समझदार हो या ना समझ हो, ज्ञान जिस जिस जीवके होता है वह ज्ञान खुदमें प्रभाव बनाता हुआ होता है, अब खुदमें किस जातिका प्रभाव है संज्ञा रूप, प्रवृत्तिरूप, प्रोग्रामरूप, जिस किसी भी रूप है प्रभाव बनाता हुआ ही ज्ञान होता है। अधुभवन नहीं होता, खुदपर उसका गुजरना नहीं होता, खुद किस रूप वह बन जाय ऐसी बात नहीं होती तो ज्ञान हो जाय यह नहीं हो सकता। तो यह प्रथम पर्त वाली बात तो सब जीवोंमें सब ज्ञानोंमें होती ही है। यह ज्ञानका स्वभाव है। और बात है क्या? पुद्गलमें जैसे रूप है तो वह रूप पुद्गलमें नहीं बना, उसका पुद्गलमें असर नहीं होता, आधार नहीं होता, एक भिन्न सा रहे और पुद्गलमें ऊपर ऊपर ही ऐसा रूप हो कि भीतर बसा ही न हो यह बात क्या सम्भव हो सकती है? यह जानकारी नहीं है, इसका अनुभवन परिणमन मात्र है और आत्माका अनुभवन ज्ञान प्रयोग रूपसे होता है। जितने भी ज्ञान होते हैं वे अपने आपका सम्वेदन तो करते ही रहते हैं तब ज्ञान से बाह्य पदार्थोंके परिज्ञानरूप कार्य बनता है। अब इतनी बात तो हो गयी लेकिन जब उस पदार्थके परिज्ञानके प्रकरणमें आयेंगे तो वहां यह बात मिलेगी कि यदि हम उस वस्तुसे अजिक परिचित हैं तो वह ज्ञान स्वयमेव बन जायगा। उसमें हमें साधन न ढूंढने होंगे। हा सही है ऐसी जानकारी बनानेके लिये हमें यहां वहांके कारण न ढूंढने पड़ेंगे। यदि अपरिचित जगह है तब तो युक्ति साधन ढूंढ़ ढूंढ़ कर प्रमाणता का निर्णय करेंगे, चाहे परिचित अवस्थामें या अपरिचित अवस्थामें ज्ञानका निर्णय हुआ हो सभी ज्ञान इन्द्रिय और मनके कारणसे उत्पन्न होते हैं। यहां उपादानकी मुख्यतासे वर्णन नहीं है किन्तु एक लोक निर्णयके नातेसे वर्णन चल रहा है।

अपनेपर बर्तनेवाली बातकी चर्चा—यह सब अपने घरकी बात कही जा रही है—अपने स्वरूपकी बात है। हममें क्या बातें गुजरती हैं, उसकी चर्चा है। देखिये! गुजर जाती हैं ये सब बातें, पर उसका पता नहीं है कि हममें क्या गुजरता रहता है। आचार्यदेव अपने अनुभवोंको ग्रन्थ निबद्ध करके हम सबको पता करा गये हैं कि हम आपके अन्दर यहाँ हो क्या रहा है? जो नहीं हो रहा उसे तो मानते कि यह होता है और जो हो रहा उसे मानते कि यह नहीं होता है ऐसी स्थिति संसारी प्राणियोंकी एक मोह अवस्थामें होती है। धन, वैभव, कुटुम्ब, पालन-पोषण किसीका कोई उपकार आदिक कार्य जिन्हें यह आत्मा कर नहीं सकता उन्हें मानता है कि मैं करता हूं। करता यह कुछ नहीं, केवल भाव बनाता है प्रत्येक प्रसङ्गमें। चाहे आप अपने किसी इष्टका इलाज कर रहे हों, आप अपनी गोदमें उसका शिर रखे बैठे हैं, उसका शिर चाप रहे हैं, उसे औषधि भी खिलाते हैं, उसे आप साहस भी दिलाते हैं इतना सब कुछ करते हुए भी आप उसका कुछ नहीं कर रहे हैं, आप तो केवल अपने भाव नर बना रहे हैं। आप तो हैं ज्ञानानन्दस्वरूप, आप वहाँ क्या कर रहे हैं जरा

Version 1

अच्छी तरह निरख तो लीजिये ! आप हैं अमूर्त, अपने आपके प्रदेशमात्र। ऐसी अपने आपकी सीमा देखिये ! कि मैं इतना हूँ, ऐसा हूँ, उस आत्मस्वरूपको निरखकर जरा बतावो तो सही कि उस प्रसङ्गमें आप क्या कर रहे हैं ?आप तो केवल अपने आपमें भाव बना रहे हैं, कल्पनायें कर रहे हैं, इससे आगे उस प्रसङ्गमें आप कुछ नहीं कर रहे हैं। तो जो न होनेकी बात है उसे तो यह जीव मानता है कि यह हो रहा है, मेरे द्वारा हो रहा है और जो बात निरन्तर होती रहती है अपने अन्तरमें उसका भान ही नहीं है। गुजर तो रही हैं वे बातें उन्हें तो मना कौन करे पर अपने आपमें गुजरी हुई बातोंका परिणमन तो हो रहा है पर अपने आपका पता नहीं हो पाता कि हो क्या रहा है। जो नहीं हो रहा है मुझमें उसे तो होना मानते हैं और जो हो रहा है मुझमें उसका परिचय नहीं है। क्या हो रहा है उसका ही दिग्दर्शन इस दर्शन शास्त्रमें कराया जा रहा है।

ज्ञानप्रवर्तनका नैरन्तर्य और उसके प्रामाण्यकी विधि— हे आत्मन् ! तुम ज्ञानरूप हो, ऐसा नहीं है कि ज्ञान कुछ बाहरसे आया हो और तुम ज्ञान बिना थे, ज्ञान आये तब ज्ञानी बनें. ऐसा नहीं है। तुम ज्ञानस्वभावरूप हो, ज्ञान गुणरूप हो तुम्हारी बात तुममें अनादिसे है, उसका परिणमन बन रहा है, विकाश चल रहा है। जब जो परिणमन होता वह बात चल रही है। अर्थात् कभी भी क्षण भरको परिणमन रुक गया हो और अब ज्ञान परिणमन होने लगा हो ऐसा नहीं है। कोई पुरुष पहिले सावधान था अब कमजोरीके कारण एकदम बेहोश हो गया १५ मिनटको कहीं ज्ञानकी धार रुक गई थी ? बराबर ज्ञानका परिणमन चल रहा था लेकिन उसके लौकिक परिचयका साधन जाननेका खराब हो गया था, अतएव इन्द्रियां प्रकट रूपमें ग्रहण न कर सकीं। तो वह अपना ज्ञान निरन्तर परिणमता रहता है। इस अवस्था में ज्ञान इन्द्रिय, मन, प्रकाश आदिक साधनोंका सन्निधान पाकर उत्पन्न होता है, यह हम आपकी आजकी परिस्थिति है जो यह ज्ञान स्वतः उत्पन्न नहीं हो पाता और यह इन्द्रिय मनोंसे हुआ करता है, और उसमें जो प्रमाणताका निर्णय है कि यह ज्ञान सही है ऐसा निर्णय प्रमाणके साथ ही जुड़ा होता है। प्रमाणकी उत्पत्ति परसे हुई तो इसका ही अर्थ यह है कि प्रामाण्यकी उत्पत्ति भी परसे हुई। जैसे कोई कहे कि दियासलाईकी सींकमें अग्निकी उत्पत्ति तो साधनोंसे हुई और फिर उसमें गर्मीकी उत्पत्ति स्वयमेव हुई। अरे उसीका नाम गर्मी है, उसीका नाम आग है, परसे मानो तो गर्मी की उत्पत्ति परसे हुई और स्वतः मानो तो दोनोंकी बात स्वतः हुई। इंसान इंसानियत में जैसे अलगसे भेद नहीं पड़ा हुआ है ऐसे ही प्रमाणमें और प्रामाण्यमें कोई अलग भेद नहीं पड़ा हुआ है। यहाँ अपनी बात चल रही है। ज्ञान हममें इस तरह उत्पन्न होता है और वह गुणवान इन्द्रियके होनेपर प्रमाणभूत बनता है और इन्द्रियके सदोष होनेपर अप्रमाणभूत बनता है।

अनुमान प्रमाणमें हेतुके हेतुत्वकी सिद्धिसे गुणोंकी सिद्धि - शङ्काकार

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

का यहां यह मंतव्य चल रहा है कि लोकमें गुण नहीं हुआ करते हैं। दोष तो हुआ करते हैं पर लौकिक भाषामें दोषके अभावको गुण कह देते हैं। कोई भी वस्तु हो वह जैसा है अपने आप स्वयं, सो है। उसमें गुण क्या है ? उसमें कोई विकार आये तो वह दोष है, वह कुछ नई बात आयी। और, जब नई बात नहीं रही तो उसीको लोग गुण कह देते हैं। शङ्काकार गुणका स्वरूप नहीं मानता। तो उनके प्रति कहा जा रहा है कि अनुमानको उत्पन्न करने वाला जो हेतु है उसमें एक गुण साध्यका अविनाभावी होना। देखिये किसी भी बातको सिद्ध करनेके लिये जो हेतु देंगे उस हेतुमें एक गुण होना चाहिए। क्या ? जिसको सिद्ध कर रहे हैं उसके बिना हेतु नहीं हो सकता, यह गुण होना चाहिए हेतुमें। जैसे धुवांको देखकर किसी मकानमें अग्निका अनुमान करते हैं तो हेतु हुआ धुवां। इस मकानमें अग्नि जल रही है धुवां होनेसे, तो इसमें हेतु क्या दिया – धुवां होनेसे। उस हेतुमें यह गुण पड़ा है कि वह साध्यके बिना नहीं होता। सिद्ध कर रहे हैं अग्निको अग्निके बिना धुवां नहीं हो सकता इस कारण धुवांको देखकर अग्निका अनुमान हो जाता है। तो अग्निका अविनाभावित्व होना हेतुका गुण है जैसे कि साध्यका अविनाभावी न हो तो यह उसमें दोष है। कोई ऐसा कहने लगे कि इस मकानमें अग्नि होना चाहिए। क्योंकि कौवा बैठा है। तो यह हेतु देना ठीक नहीं है। साध्यका अविनाभाव होने रूप हेतुमें गुण नहीं है। अग्निके बिना भी कौवा बैठा रहता है। उसका कोई कार्य कारण आदि सम्बन्ध नहीं है। तो साध्यका अविनाभावित्व नहीं रहा यह हेतुमें दोष है। न साध्यका अविनाभाव दोष रहा, गुण नहीं रहा। हो साध्यका अविनाभाव तब दोष न रहा, गुण हुआ। गुणका अभाव कैसे करते हो ? गुण भी है और दोष भी है।

दोषराहित्यको गुण मानकर गुणका अभाव माननेपर गुणविकल्पताको दोष मानकर दोषके अभावका प्रसङ्ग—यदि यह कहो कि साध्यका अविनाभावी रहना तो हेतुका स्वरूप ही है। गुण क्या ? वह तो वस्तुका स्वरूप है, होना तो उसे कहा जाय जो अलगसे है। दोष अलगसे होता है। जैसे आँखसे बड़ा अच्छा दिखता तो आंखमें कोई दोष नहीं है और यदि कम दीखे, पीला दीखे तो उस आँखमें दोष आ गया। जो था सो रह गया वह गुण है। यों ही यदि यह कहो कि अनुमान बनानेमें साध्य बताने वाला जो हेतु है उसमें गुण कुछ नहीं है। साध्यका अविनाभावित्व वह तो हेतुका स्वरूप है। तो यों यह कह देंगे कि जब हेतुमें अविनाभाव न रहेगा तो कह देंगे कि स्वरूपविकल्पता है, दोष भी क्या चीज है ? तो गुण भी है और दोष भी है।

प्रभुस्तवनमें गुणोंकी प्रशंसा—भक्तामर स्तोत्रमें एक जगह लिखा है कि हे नाथ ! इसमें अधिक आश्चर्य कुछ नहीं है कि सारे गुण आपमें आ गए। अरे कोई आश्चर्य नहीं ? लोकमें जो सबसे उत्कृष्ट बातें हैं, अच्छी चीजें हैं वे सब गुण प्रभुमें आ

Version 1

गए ! आश्चर्य इसमें कुछ नहीं। आश्चर्य हमें यों नहीं कि उन सारे गुण बेचारोंने कोशिश तो बहुत की कि हम सभी संसारी लोगोंके पास जायें पर सभी संसारी लोगों ने उन सारे गुणोंको अपने पास आनेके लिये मना किया, तुम मत यहाँ आओ, तुम्हारे लिए यहाँपर जगह नहीं है, और सारे दोषोंको बड़े आदरसे बुलाया – आवो ! खूब रहो। यह तुम्हारा ही तो घर है, सो बेचारे सारे गुण झकमारकर प्रभुमें पहुंच गए और सारे दोष संसारी लोगोंमें पहुँच गए। सो देखो ! दोष एक भी प्रभुमें आया क्या ? क्यों आये ? उन्हें तो अनन्तानन्त घर मिल गये। सो कौन सी आश्चर्यकी बात कि प्रभुमें सारे गुण आ गए ! यह प्रभुकी प्रशंसा करनेका एक ढङ्ग है। तो गुण कोई सत्ता ही नहीं रखते, हैं ही नहीं कुछ, दोष ही हैं, यह बात माननेके काबिल नहीं है। वस्तुमें सही स्वरूप रहना, यथार्थ स्वभाव रहना वे सब गुण हैं और विकार आना वे सब दोष हैं।

गुणोंके कारण आगममें प्रमाणता और भी देखिये ! जितने शास्त्र हैं आगम उनमें प्रमाणता क्यों है ? ये आगम प्रमाण क्यों माने जाते ? इसलिए माने जाते कि ये शास्त्र गुणवान पुरुषोंके द्वारा रचे गए हैं। तो गुण कुछ है कि नहीं ? कहते भी हैं लोग कि यह धवल ग्रन्थ प्रमाण है। अरे उसमें प्रमाण क्यों है ? अमुक आचार्यने बनाया, उसकी टीका अमुकने की वह बड़े वैरागी तत्त्वज्ञानी पुरुष थे। तो गुणोंकी ही तो चर्चा हुई। तुम कहते कि गुण कोई चीज ही नहीं है, दोष चीज है। आगममें प्रमाणता इसीलिये तो आती है कि वे गुणवान पुरुषोंके द्वारा रचे गये हैं। कोई लोग ऐसा मानते कि जो आगम हैं उनको कोई रचता नहीं है। जैसे कुछ लोग तो मानते हैं कि आकाशसे शास्त्र उतरें। हैं ना कोई ऐसा मानते कि ईश्वरने खुद अपने हाथसे दिया किसी पैगम्बरको। फिर उससे ये शास्त्र चले। तो ऐसा लोग क्यों मानने लगे ? यों कि हमारे शास्त्र सबसे अधिक प्रमाणभूत माने जायें। एक दृष्टिसे देखो तो उनकी यह बात सिद्ध भी होती है। एक तो यह कि आकाशसे उतरे मूलमें आगम सो ठीक है। आकाशसे तो उतरे हैं। ये द्वादशांग शास्त्र हैं आकाशसे उतरे मगर इसका मतलब समझो। यहाँसे ५ हजार ऊपर समवशरण है, वहाँ लोग जाते हैं, सभावोंमें दिव्य ध्वनि सुनते हैं गणधरदेव उनके द्वादशाङ्गकी रचना करते हैं। लो इतनी दूरसे आरम्भमें उतरे ये सब शास्त्र। और लोग कहते हैं कि प्रारम्भमें शास्त्रको ईश्वरने दिया बाइबिल आदिक तो यह भी ठीक है, कहते हैं ना कि ये आगम सर्वज्ञद्वारा प्रणीत हैं। सर्वज्ञकी परम्परासे ये शास्त्र रचे चले आये हुए हैं। मूलमें प्रभुकी दिव्यध्वनि हुई, उससे गणधरदेवने द्वादसांगकी रचनाकी और फिर ये सब शास्त्र ऋषी संतोंने मुनियोंने बनाये और शास्त्र सभामें मंगलाचरणमें कहते भी हैं अस्य मूल ग्रन्थ, कर्तार: सर्वज्ञदेव: तो प्रभुकी देन है ना। अगर कोई यों मान ले कि जैसे उड़ता हुआ कोई हवाई जहाज है बिगड़ जाय तो वह आकाशसे गिर जाता है। इस प्रकार से शास्त्र आकाशसे गिरे हों और नीचे किसी पैगम्बरने झेले हों ऐसी बात नहीं है।

उस समवशरणमें वहाँ मूल रचना हुई उससे फिर चले आये। इस तरह तो कह लो, पर हवाई जहाजकी तरह गिर जायें शास्त्र और उन्हें पैगम्बर झेलें, ऐसी बात नहीं है। इसी तरह ईश्वर कोई हाथसे किसीको शास्त्र सम्हाले, ऐसा भी नहीं है। शास्त्र गुणवान पुरुषोंके द्वारा रचे गए हैं, तब शास्त्रमें प्रमाणता है, अपौरुषेयता नहीं है।

अपौरुषेयत्व होनेसे प्रमाणत्व होनेके नियमका अभाव भैया! यह नियम नहीं है कि जो अपौरुषेय हो वह प्रमाण होता है। लोगोंने यह कल्पना क्योंकि शास्त्र किसी पुरुषके द्वारा रचे गए नहीं हैं किन्तु आकाशसे उतरे हैं या ईश्वरने दिये हैं। यह कल्पना इसलिये गढ़ी गई कि हमारे शास्त्र पक्के कहलायें। भला जो यों ही आकाशसे उतरें उनमें भूल हो सकती है क्या? जो ईश्वरने खुद दिये हों उनमें भूल हो सकती है क्या? शास्त्र अपौरुषेय हैं लेकिन यह न सोचा कि अपौरुषेय होनेसे प्रमाणता हो ही जाय, यह नियम नहीं है जैसे नीले कमलका वन है, अर्थात् नील कमल वाला तालाब है, जहां पानी बिल्कुल नहीं दिखता। केवल नील कमल खूब दिख रहे हैं वहां पर कभी कभी यों लगता है जैसे कि आग जल रही हो। अग्निकी लपटें कभी कभी नीली दिखती हैं और लोहा आदिकको जलावो तो खूब नीली लपटें निकलती हैं तो उस तालाब या वनके निकट वे जो नीली नीली लपटें दीखते हैं क्या वे पौरुषेय हैं? वे तो अपौरुषेय हैं, उस आगको किसी पुरुषने नहीं जलाया पर दिख रही वे आग। तो जो अपौरुषेय हो वह प्रमाण हो ही यह नियम तो नहीं रहा।

अनादिसे चला आया होनेसे प्रमाणत्व होनेके नियमका अभाव कुछ लोग कहते हैं कि यह ग्रन्थ तो अनादिसे चला आया इसलिये प्रमाण है। भाई अनादि से चला आया हो वह प्रमाण ही हो ऐसा नियम नहीं है। जैसे मिथ्यादर्शन अनादिसे चला आया है वह मिथ्यात्व अज्ञान मोह तो प्रमाण नहीं है। तो जो अनादिसे चला आया हो उसमें भी प्रमाणकी गारंटी नहीं है, किन्तु गुणवान पुरुषोंके द्वारा रचे गए हों उसमें प्रमाणकी गारंटी है। तो जिसे गुणके आधारपर प्रमाणकी गारण्टी बनती है उस गुणका ही तुम अभाव कह रहे हो कि दुनियामें गुण कोई चीज नहीं होते। जो होता है सो दोष होता है। दोष नहीं रहे उसीको ही गुण कहा करते हैं। और, कैसे आगम अपौरुषेय माने गये, किसी पुरुषने रचे नहीं. उन्हींमें जो वाक्या हैं उनसे सिद्ध होता कि अमुक अंश अमुक ऋषिने बनाये अथवा जो वाक्य रचना हुई है वह क्या बिना बने ही चली आयी है लेकिन प्रमाणता बनानेके लिये अपौरुषेय माना गया है। तो फिर यह बतलावो कि अपौरुषेयमें फिर झगड़ा क्यों होता है? भावना नियोग आदिक प्रकरणमें कोई कुछ अर्थ बनता कोई कुछ। प्रमाणभूत है तो वह आगम एक ही अर्थ दुनियाको बताये। अपौरुषेय माननेपर भी यह तो मानना पड़ेगा कि इसका अर्थ अमुकने लगाया, ठीक है क्योंकि यह पहुंचे हुए गुणवान योगी हैं। तो प्रमाणताकी पुष्टिके लिये गुणकी बात जरूर रखेंगे।

http://sahjanandvarnishastra.org/

लोक व्यवहारमें भी गुणोंके कारण प्रमाणत्वका निर्णय—लोक व्यवहारमें भी उसकी बात पक्की मानी जाती है जिसके प्रति लोग यह ख्याल करते हों कि यह गुणवान है, यह सच्चा है यह ईमानदार है। ये गुण प्रसिद्ध हों जिसके बारेमें उसकी प्रमुखता मानी जाती है। ग्राहक लोग उसीकी दूकानपर उत्सुकतासे पहुँचते हैं जिसके प्रति लोगोंका यह ख्याल होता है कि यह सच्चाई बर्तता है, इसमें यह गुण है और लोभ लालच भी नहीं है, साधारण मुनाफा रखकर चीज देता है। ऐसी प्रसिद्धि जिस दूकानदारकी हो उसकी प्रमाणता मानी जाती है। तो जिसपर प्रमाणताका साधन निर्भर है उस ही गुणको मना करते हैं, कि इन्द्रियमें गुण नहीं हुआ करते, दोष ही हुआ करते हैं। गुण भी है दोष भी है। निर्णय कर लेना चाहिए कि गुणवान पुरुषका ज्ञान प्रमाण है। गुणवान इन्द्रियसे जाना गया ज्ञान प्रमाण है। दोषवान पुरुषका ज्ञान अप्रमाण है। सदोष इन्द्रियसे जाना गया ज्ञान अप्रमाण है। प्रमाणता और अप्रमाणताका निर्णय गुण और दोषसे होता है। तो जैसे अप्रमाणकी उत्पत्ति दोषसे होनेके कारण परसे हुई इसी प्रकार प्रमाणकी उत्पत्ति गुणवान इन्द्रियसे होनेके कारण परसे हुई। अतः यह मानना चाहिए कि उत्पत्तिमें तो प्रामाण्य परतः होता है और ज्ञप्तिमें, जानकारीमें, ज्ञान अभ्यास दशामें स्वतः होता है और अनभ्यास दशामें परतः होता है।

साधनभूतके गुणके आधारपर प्रामाण्यका निर्णय—ज्ञान स्वरूपके इस प्रकरणमें ज्ञानकी प्रमाणताकी उत्पत्ति और प्रामाण्यका स्वकार्य इन दोनोंका क्या ढंग होता है उसका निर्णय इस प्रकरणमें चल रहा है। तो गुण कोई चीज होते ना। गुण न माननेपर न आगम प्रमाण ठहरता न लोक व्यवहारमें मानी जाने वाली बात प्रमाणता सिद्ध करनेके लिये अपौरुषेय माननेकी कल्पनाका श्रम व्यर्थ उठाते हैं। आगममें प्रमाणता आती है तो ये गुणवान पुरुषोंके द्वारा रचे गए हैं इस आधारपर आती है। कोई बात अनादिसे चली आयी इस कारण भी प्रमाण नहीं, कोई बात अपौरुषेय हो इस कारण भी प्रमाण नहीं। उसके साधनमें आधारमें यदि गुण हैं तो प्रमाण है और दोष है तो अप्रमाण है।

अपौरुषेयत्वकी मान्यतासे प्रमाणत्वके पूरा पड़नेकी अनिष्पत्ति—आगमको अपौरुषेय भी मान लो अपौरुषेय मायने पुरुषके द्वारा न रचा गया; इसका बोध किसी भी पुरुषके द्वारा नहीं रचा गया; आगमको अपौरुषेय भी मान लो तो भी अर्थमें जो प्रतीति आयगी वह स्वतः नहीं आ सकती जैसे आग अपनी लपटें उठाया करती है क्या कोई आगम भी अपनेमेंसे अर्थ उठाया करता है? यदि आगम स्वतः अपना अर्थ बताया करें तो फिर सारे आगमसे अर्थ निकलते ही रहना चाहिए। कोई सुने चाहे न सुने वहांसे तो अर्थकी बौछारें आती ही रहना चाहिये। यदि आगमको स्वतः प्रतीतिका उत्पन्न करने वाला, अर्थका बताने वाला मानते हो तो आगम स्वतः

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अर्थ बताने वाला नहीं है सो प्रमाण नहीं होता, और जो पुरुष उसका अर्थ लगाये उसमें प्रयत्न करे तो उस प्रयत्नकी अभिव्यक्ति जो कर रहे हैं वे पुरुष तो रागादिक दोषोंसे सहित हैं उससे उनके द्वारा बताये गए अर्थमें प्रमाणता कैसे आयगी। प्रमाण माना है जिन्होंने केवल शास्त्र; जिन शास्त्रोंको किन्हीने रचा भी नहीं है, अपौरुषेय हैं तो वे शास्त्र स्वयं तो अपना अर्थ बता नहीं पाते और जो कोई उसका अर्थ लगायेंगे वे हैं रागादिक दोषोंसे सहित, हैं उससे उनके द्वारा बताये गए अर्थमें प्रमाणता कैसे आयगी। प्रमाण माना है जिन्होंने केवल शास्त्र; जिन शास्त्रोंको किन्हींने रचा भी नहीं है, अपौरुषेय हैं तो वे शास्त्र स्वयं तो अपना अर्थ बता नहीं पाते और जो कोई उसका अर्थ लगायेंगे वे हैं रागादिक दोषोंसे सहित, अत: उनकी बातमें प्रमाणता आ नहीं सकती। तब फिर सदैव अप्रमाणपना रहा। कुछ युक्ति सिद्ध बात न हो और अप्रमाण आ न जाय इस डरसे आगमको अपौरुषेय मानना यह गजस्नानकी तरह है। जैसे हाथीने थोड़ी देरको मन समझानेके लिये सोच लिया कि मैं स्नान करूँ सो सूँडसे पानी डाल स्नान किया, पर बादमें उससे भी अधिक धूल लपेट ली। ऐसे ही कोई सिद्धान्त ऐसा माने कि जिसमें कोई दोष न रहे और मानले विपरीत तो वह गजस्नानकी तरह है। इस कारण प्रमाणकी प्रमाणताकी उत्पत्ति स्वत: न मानना चाहिए। जिन साधनोंसे ज्ञान उत्पन्न होता है वे साधन यदि गुणवान हैं तो निर्णय यह बनेगा कि यह ज्ञान प्रमाणभूत है। ज्ञानकी प्रमाणताकी उत्पत्ति यों परसे हुई। तो इस प्रकरणमें यहां तक यह सिद्ध किया है कि प्रमाण गुणवान इन्द्रियसे उत्पन्न हो तो वह प्रमाण है और दोषवान इन्द्रिय आदिक साधनोंसे उत्पन्न हो ज्ञान तो वह अप्रमाण है।

निर्निमित ज्ञप्ति माननेपर बाधा - भाट्टजन प्रामाण्यकी उत्पत्तिको स्वत: मानते और ज्ञप्ति भी स्वत: मानते हैं। उसमें यह तो अब तक सिद्ध किया गया है कि प्रमाणमें प्रामाण्यकी उत्पत्ति परत: होती है अर्थात् इन्द्रिय और मन आदिक जिन साधनोंसे ज्ञान उत्पन्न होता है तो उस ज्ञानमें प्रमाणता है अथवा नहीं है, इसकी भी उत्पत्ति उन्हीं इन्द्रिय आदिक साधनोंसे होती है अर्थात् गुणवान इन्द्रिय हो तो प्रामाण्यकी उत्पत्ति होती है। अब ज्ञप्तिके विषयमें प्रामाण्यकी स्वत: अथवा परत: ज्ञप्ति सिद्ध कर रहे हैं। भाट्ट लोग ज्ञप्तिमें भी प्रामाण्यको स्वत: मानते हैं अर्थात् ज्ञानमें जो जानकारी हुई है और जो जानकर किसी पदार्थमें लगना चाहे व उससे हटना चाहे यह भी स्वत: हुई है, उनके प्रति पूछा जा रहा है कि यदि प्रमाण ज्ञप्तिमें भी सर्वत्र परकी उपेक्षा नहीं रखता तो यह तो बतलावो कि वह जानकारी निमित्त सहित हुई या निर्निमित्त हुई। जो जानकारी बनती है हम आप सब लोगोंको, इसमें कुछ भी सीमा, निमित्त साधन, आधार कुछ नहीं है क्या ? अथवा इसमें कुछ निमित्त है ? यदि कहोगे कि हम लोगोंको जो जानकारी होती है वह निर्निमित्त होती है तो फिर प्रतिनियत देश काल स्वभावका अभाव हो जायगा, क्योंकि यह सम्भा ही दिखता है,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सारा विश्व क्यों नहीं जाननेमें आता। यह जगत इस तरह क्यों नजर आती, सर्व पदार्थोंके आकाररूप क्यों नहीं नजर आती ? न कोई देशका स्वभाव रहेगा, न काल का स्वभाव रहेगा। सर्व व्यवस्थाएँ नष्ट हो जायेंगी, इसलिए जानकारी भी निमित्त सहित होती मान ली जाना चाहिये और तब ज्ञप्ति सर्वथा स्वतः होती है इस बातमें विघ्न आ जायगा।

निमित्त सहित ज्ञप्ति माननेपर स्वतः प्रामाण्य होनेका अनियम — यदि कहो कि जानकारी निमित्त सहित होती है तो वह निमित्त क्या है ? हम जो कुछ पदार्थोंको जानते हैं उस सब जाननेमें निमित्त स्व है या पर है ? अर्थात् हम ही अपनी जानकारीमें जिस जिस पदार्थको जानते हैं उस समस्त जाननेमें हम ही निमित्त हैं अथवा पर निमित्त है। यदि स्वयं निमित्त हैं तो प्रथम तो यह बात है कि स्व-सम्वेदी ज्ञान इस शङ्काकारने माना नहीं। दूसरी बात यह है कि यदि स्वयं निमित्त बन जायें जानकारीमें तो स्वयं तो सदैव है फिर भी जिस चाहे अनियमित देश काल के नियम बिना जानकारी होने लगेगी। देखिये ! ऐसा भी यह शङ्काकार है कि ज्ञान को स्वसम्वेदी तो मानता नहीं, अर्थात् ज्ञान स्वयं अपने आपको जान जाता है ऐसा तो मानते नहीं और जानकारीमें प्रमाणता स्वयं होती है, इसे मानते हैं, खैर अन्य निमित्त भी मान लें तो वह अन्य निमित्त क्या है ? क्या वह प्रत्यक्षसे जाना जाता है या अनुमानसे जाना जाता है ? प्रत्यक्षसे तो जाना नहीं जाता, क्योंकि प्रत्यक्षका व्यापार तब होता है जब इन्द्रिय और पदार्थका सम्बन्ध बने लेकिन ज्ञप्तिमें, प्रामाण्यमें इन्द्रिय का सम्बन्ध बनता नहीं और मनका भी सम्बन्ध नहीं बनता क्योंकि मन भी एक भिन्न वस्तु है, शङ्काकारके सिद्धान्तमें भी, उससे क्या व्यवस्था बनेगी ? और इससे किसीका अनुभव भी नहीं होता। कहेंगे कि अनुमानसे जाना जायगा तो अनुमान तो तब बनता है जब कोई साधन हो। शायद यह साधन बताने लगो कि पदार्थका प्रकाश होता है इस कारण ज्ञप्ति होती है और प्रामाण्य स्वतः होता है तो वह अर्थप्रकाश क्या यथार्थ विशेषण सहित है अथवा निर्विशेषण है ? यदि विशेषण सहित है तो उसे पूर्वमें ही जाने हुए ज्ञानसे, प्रथम प्रमाणसे जाना या अन्य प्रमाणसे। प्रथमसे जाना बतावेंगे तो अन्योन्याश्रय दोष होगा दूसरेसे अनवस्था दोष होगा। सीधीसी बात है कि हम जानते रहते हैं और उन जानकारियोंमें कोईसी बात तो जल्दी स्वतः हो जाती है वहाँ अभ्यास दशामें प्रामाण्य स्वतः है और किसी जानकारीमें प्रमाणता आना यह कुछ और साधनोंसे ढूंढ़कर आता है इस कारण अपरिचित दशामें प्रमाणता परतः है।

किसी विदित वस्तुमें भी अनेक अंशोंकी अपरिचितता होनेसे उनके प्रामाण्यकी परतः सिद्धि —कई बार ऐसा भी होता कि आप अपने घरमें सीढ़ियों पर रोज चढ़ते हैं ऊपर जानेके लिये, पर पूछा जाय कि बतावो आपके घरके जीनेमें कितनी सीढ़ियां हैं तो आप बता नहीं सकते। रोज रोज चढ़ते हैं, दसोंबार चढ़ते

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

उतरते हैं पर गिनतीमें कितनी सीढ़ियां हैं यह पता नहीं है, यद्यपि है अभ्यासकी दशा परिचयकी दशा। केवल उस रास्तेसे जानेका अभ्यास है सो रास्ता भी खूब मालूम है। झट किसी चीजका खबर आयी, ऊपर रखी है, तुरन्त पहुंच गए। तो एक ही पदार्थमें जिस तत्वका अभ्यास हो उसका तो प्रामाण्य स्वत: होता है और जिसका अभ्यास न हो उसका प्रामाण्य परत: होता है। आपके घरकी सीढ़ियोंको कोई कह दे कि इसमें तो १४ सीढ़ि हैं तो आप यह कहोगे कि गिनकर दिखावो। गिनोगे तब निश्चय होगा तो उनकी गिनती आपको अपरिचित है और रास्ता परिचित है। कोई पूछे आप इस सज्जनको जानते हैं ना जो आपका रिस्तेदार हो, कुटुम्बी हो ?....अजी इसको तो हम खूब जानते हैं। दसों वीसों वर्षसे साथ रहा, साथ पढ़ा, इसके रग रगको हम जानते हैं, अच्छा साहब ! तो बतावो इसके पेटके ऊपर पसुलियां कितनी हैं ? गलेके भीतर नसें कितनी हैं ? अरे जितना जानते हैं उतना परिचय है। किसी भी एक पदार्थके बारेमें जितना परिचय है उतनेका तो अभ्यास है और जिसका परिचय नहीं उसका अभ्यास क्या ? तो अभ्यास दशामें प्रामाण्य स्वत: होता है और अनभ्यास दशामें प्रामाण्य परत: होता है।

दोनों नयोंसे ज्ञानतत्त्वके निर्णयकी आवश्यकता—यह सब दर्शन शास्त्र में ज्ञानतत्त्वकी चर्चा चल रही है जिस ज्ञानके द्वारा पदार्थका निर्णय किया जाता है। यों समझिये कि यह यथार्थ व्यवहारकी परीक्षा करने वाला शास्त्र है। यद्यपि हम निश्चय दृष्टिसे जब निरखेंगे तो हमें एक पदार्थ, एक तत्त्व, एक परिणति, एक स्वभाव वही कर्ता कर्म करण सम्प्रदान अपादान आधार दिखेगा। यह कहलाती है अध्यात्म दृष्टिसे निश्चय दृष्टि। कितने ही मेलोंमें कुछ भी कार्य हो रहा हो निमित्त यद्यपि अनेक हैं फिर भी यदि कोई केवल एक परिणमन वाले पदार्थको ही निरख रहा है तो उसे तो यह दिखेगा कि पदार्थका परिणमन खुदमें खुदके द्वारा खुदसे खुदके लिये हुआ। वाद विवादके प्रसंगमें भी जहां स्वरूपका निश्चय किया जा रहा हो, अध्यात्म दृष्टिसे यह वादी अथवा प्रतिवादी अपने आपमें अपना श्रम कर रहा है, विकल्प वृत्ति बना रहा है और अपने ही द्वारा आनेमें अपने लिये बना रहा है पर केवल एक निश्चयका एकान्त कर लेनेसे तीर्थ रुक जायगा। धर्म वृत्ति समाप्त हो जायगी। अत: व्यवहार दृष्टिसे भी निर्णय करना आलम्बन लेना यह भी आवश्यक हो जाता है। तो दर्शन शास्त्रमें वस्तु स्वरूपके यथार्थ सर्वतोमुखी वर्णन करनेके लिये ज्ञानकी यह प्रथम व्याख्या की जा रही है।

निश्चय एकान्तमें व्यवहार विडम्बना—यों कोई निश्चय एकान्तकी ही धुन रखा करे तो फिर है क्या ? एक उद्दण्डता सी छा जायगी। हम आपसे कैसा भी व्यवहार करलें बुरा बोल लें और कोई कहे कि तुमने ऐसा अपराध क्यों किया, उस का कसूर क्यों किया ? अजी कोई जीव किसी दूसरेका कसूर कर सकमा है क्या ? हम वचन वर्गणावोंके कर्ता हैं क्या ? एक द्रव्य दूसरे द्रव्यका क्या करता है ?

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

इतने शब्द ही न बोलें, तो सारे व्यवहारकी विशुद्धि खतम कर दी जाती है और यदि हो कोई ऐसा कि सचमुचमें यह श्रद्धा जगे कि मैं शब्दका कर्ता नहीं। मैं दूसरे पदार्थका कुछ परिणमन करता नहीं तो इस श्रद्धावालेसे फिर दुर्व्यवहार बनेगा नहीं। तो अध्यात्म दृष्टिमें जो स्थान मिलता है वह बड़ी सम्हालका स्थान है और अपूर्व है लोकमें अध्यात्म महलपर चढ़नेके लिये जो रास्ता तय करते हैं उस रास्तेको तो दर्शन शास्त्र तय कराता है। अध्यात्म तो महल है और दर्शन शास्त्र उस महल पर चढ़नेकी सीढ़िया हैं।

प्रयोगात्मक प्रतिबोध - एक बार गुरुजी सुना रहे थे कि एक पंडित किसी वृद्ध पंडितसे पढ़ा करता था किन्तु था उसका एक अभेदवाद, एकान्तवाद, ब्रह्मवाद, ब्रह्म सत्य है और सब मिथ्या है, पर आचरण था उसका जहाँ चाहे जब चाहे जो चाहे खाने पीने का। एक बार उस शिष्यने देखा कि गुरुजी एक मांस पकाने वालेकी दूकानपर बैठे रसगुल्ला खा रहे थे, तो उस शिष्य पंडितने गुरुजीके प्रतिबोधके लिये दो तमाचे जड़ दिये। गुरु कहता है कि अरे ! यह तूने क्या किया ? शिष्य बोला आप इस दूकानपर रसगुल्ले क्यों खा रहे हैं ? तो गुरु कहता है कि एक ब्रह्म सत्य है और सब मिथ्या है। तो शिष्य बोला फिर आप क्यों नाराज होते ? हमारे ये दो तमाचे भी मिथ्या हैं। तो यथार्थ ढङ्गसे विषय कषायोंसे रुचि हट जाना यह अन्य बात है और बोल-चालमें बोलना यह अन्य बात है। जैसे रोटी रोटी शब्द बोलनेसे कहीं रोटी तो नहीं पक जाती, ऐसे ही शब्दोंके बोलने मात्रसे आत्मामें वह प्रभाव नहीं जगता जो प्रयोगसे जगा करता है। तो जो प्रयोग करनेकी विधि है वह दर्शनशास्त्रसे विदित होती है और प्रयोग किए जानेके सम्बन्धमें जो स्थिति बनती है वह अध्यात्म की स्थिति है।

हमारा स्वभाव और परिस्थिति - इस प्रसङ्गमें यह बताया जा रहा है कि हे आत्मन् ! तुम ज्ञानस्वरूप हो, वह ज्ञानस्वभाव विकसित होता रहे, ऐसी भीतर में भावना पड़ी हुई है। और, उस स्वभाव दृष्टिसे देखा जाय तो तुम्हारा स्वरूप सर्वथा प्रमाण रूप है, यथार्थ सत्य है, सर्वज्ञताको लिए हुए है। लेकिन, परिस्थिति जो हो रही है, जिस परिस्थितिसे हम आपका काम चल रहा है उस परिस्थितिका विवरण जानना चाहें तो बात यह है कि हम आपको जो ज्ञान उत्पन्न होता है वह इन्द्रिय मनके निमित्तसे होता है। श्रुतज्ञानकी भी उत्पत्ति इन्द्रिय और मनके निमित्तसे हो रही है, जिसमें मतिज्ञान व्यवहित है। मतिज्ञानकी उत्पत्ति तो इन्द्रिय और मनके निमित्तसे स्पष्ट हो ही रही है। यद्यपि श्रुतको मनसे उत्पन्न होना बताया है लेकिन जिन जीवोंके मन नहीं है क्या उनके श्रुतज्ञान नहीं होता ? मतिज्ञान और श्रुतज्ञान समस्त संसारी प्राणियोंके होता है। एकेन्द्रियसे लेकर पञ्चेन्द्रिय तक प्रथम गुणस्थानसे लेकर १२ वें गुणस्थान तक श्रुतज्ञान बना रहता है और हम आप सब बराबर समझ भी रहे हैं।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

जो ज्ञान उत्पन्न होता वह इन्द्रिय और मनके माध्यमसे होता है और यही एक कारण है कि प्राणियोंको इन्द्रियके विषयोंमें प्रीति जगती है। यह ज्ञान इन्द्रियका निमित्त पाकर होता है। और, जिस निमित्तसे यह ज्ञान चलता है उस निमित्तमें इस ज्ञानकर्ता को प्रीति जगना एक प्राकृतिक सी बात है। तो इसे इन्द्रियमें प्रीति जगी। अपना शरीर अपने नाक मुख अपने आपको प्रीतिकर होते हैं। बहुत बूढ़ा आदमी भी यदि दर्पण देखनेको पा जाता है तो वह भी अपने नाक मुखपर हाथ फेरकर अपनी सुन्दरता में प्रीति करता है। तो इन्द्रियमें प्रीति होना प्राकृतिक बात है, क्योंकि उन हीसे ज्ञान जग रहा है।

निश्चयत: ज्ञानकी स्वत: व्यक्ति— निश्चय दृष्टिसे यह आत्मा ज्ञान स्वरूप है और इसमें जो विकास होता है ज्ञानका अवसर पा पाकर अपने ही ज्ञान स्वभावसे ज्ञानका विकास होता है। ये इन्द्रियां वास्तविक मायनेमें ज्ञानकी उत्पत्ति करने वाली नहीं हैं किन्तु ज्ञानकी रोड़क है। जैसे एक मकानमें कोई खिड़कियां लगी हैं तो लोग जब कोई चीज बाहर देखना चाहते हैं तो खिड़कीसे देखते हैं और आनन्द मानते हैं कि हमारे घरमें अच्छे मौकेपर खिड़की है। हमको यहांसे सारी सड़क दिखती रहती है। पर आप यह बतावो कि आप खिड़कीसे देखते हैं क्या ? अरे खिड़की न होती तो क्या आपको कुछ न दिखता ? हाँ कैसा दिखता, भींट तो आ जाती। अरे भींट भी क्यों आ जाती ? कुछ भी न हो तो भींट भी किस तरहसे दिखेगी। फिर खिड़की का गुण क्यों गा रहे। खिड़कीकी बनावट सजावट किसी तरहबाधक है। ये मिल गए सो देखते हैं, पर देखने वाला खुद अपनी कलासे योग्यता देखता है। भींट आड़े पड़ गयी इसलिये खिड़कीका सहारा लेना पड़ता है यदि भींट आड़े न पड़ी हो तो खिड़की के सहारेकी जरूरत क्या थी ? ऐसे ही हम आप कर्मोंके भींटसे दबे पड़े हैं इस कारण यह कुछ इन्द्रियोंका सहारा लेना पड़ रहा है ज्ञानके लिए लेकिन क्या आत्माका स्वभाव ऐसा है कि किसी भी परको जाननेके लिये इन्द्रियका सहारा ले, ऐसा स्वभाव आत्मामें रंच नहीं है, ऐसा ज्ञानस्वरूप है यह आत्मा। उस स्वभावको यह जीव पहिचान सके इस ओर यदि प्रयत्न करे और जान जाय। तो इससे बढ़कर पुरुषार्थ, व्यवसाय, अर्जन, कमाई और कुछ नहीं है।

विकल्प व्यवसायोंका धोखा— जो कुछ बाहर नजर आ रहा है इस सबका पूर्णतया धोखा है, कुछ लाभ नहीं मिलता। अपने बल, ज्ञान, सुख, दर्शन इन चार गुणोंको नष्ट कर दिया जाता है। अब तककी जिन्दगीसे अंदाज लगा लें कि इन अनेक वर्षोंमें किस किस वैभवसे प्रीति नहीं की। बचपनमें जवानीमें सारे जीवनमें किन किनका सम्बन्ध, क्या क्या प्रीतियां न की होंगी। अब बतलावो कि जो मौज माना, जो प्रीति हुई वह सब संचित होकर क्या आज कुछ है उनकी गाँठमें ? अजीव पदार्थोंका यदि बोरेमें संचय करते जावो तो कुछ ही दिनोंमें बोरा भर जायगा, पर

http://sahjanandvarnishastra.org/

यहां तो यह भावरूप है। जो भाव बनता उसका संचय तो दूर रहा, वह अगले क्षणमें टिक नहीं सकता। जो भाव बना, जो प्रीति बनी, जो विकल्प हुआ, जो मोह किया वह अगले क्षण नहीं ठहरता और किसी दूसरे विकारको, प्रीतिको, मोहको उत्पन्न करके नष्ट हो जाता है।

विभावोंकी प्रवल शत्रुता और उसके निवारणका उपाय ज्ञानकी सम्हाल — देखिये भैया! कितना जगरदस्त दुश्मन है यह विभाव। कोई एक दुश्मन मेरे सामने देर तक रहे तो उसका इलाज भी कर दें पर यह विभाव दुश्मन तो उत्पन्न होकर दूसरे दुश्मनको उत्पन्न करके नष्ट हो जाता है और यह परम्परा चलती रहती है, फिर दूसरे विभाव और दुश्मन दूसरे अगले क्षणमें नये विभाव दुश्मनको उत्पन्न करके नष्ट हो जाते हैं। बताओ ऐसा जबरदस्त आक्रमण है इस आत्मापर। उन विभावोंका, उन मौजोंका, उन प्रीतियोंका न संचय होता और जब विभाव होते तब शान्ति रहती है। सब धोखा है, क्लेश है, बरबादी है। लोग विकल्प करते हैं कि मैं इतना धनी हो जाऊँ, विकल्प करके पाप करके तो स्वयं मलिनता मिलेगी। क्या है वैभव? पर वस्तु है, और इकट्ठा होगया तो क्या हो गया? यह तो मरकर कहीं चला जायगा। रहे बाल बच्चे कितने भी तो उससे क्या सम्बन्ध है इस व्यक्ति का? हां, बच्चोंके पुण्यका उदय है, उन्हें वैभव मिलना है, उसके लिए नौकरी कर रहा है यह कमाने वाला व्यक्ति। शान्ति, सन्तोष, अनुराग, तत्त्वप्रेम, आत्मदृष्टि ये बातें होती रहें तो समझिये कि हम अपना भविष्य बना रहे हैं ठीक, और ये बातें न बनें, हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह, इन पापोंमें ही उपयोग लग रहा है तो चाहे लौकिक इज्जत बढ़ जाय, कुछ सम्मान हो जाय तब भी कुछ नहीं रखा। अपने ज्ञानभावको सम्हालो, अपने ज्ञानस्वरूपकी विशेषताएँ निहारो, क्या उसमें शैली है, उस ही ज्ञानकी इस प्रसंगमें चर्चा चल रही है कि ज्ञान ही प्रमाण है और प्रमाणता जानकारीमें तो परिचय दशामें स्वतः होती है और अपरिचय अवस्थामें परतः होती है।

संवादी ज्ञानसे पूर्वज्ञानमें प्रमाणता, दृढताका परिच्छेदन जो कोई ज्ञान संदिग्ध रहता है, अप्रमाण रहता है, पदार्थ ऐसा है या नहीं, पदार्थके जाननेकी यथार्थ रूपसे पहिचान की उत्सुकता रहती है तो वहां दूसरे ज्ञानसे प्रमाण आता है। जैसे कुछ अंदाजा लगाया कि वहां जल होना चाहिए, पर दृढ़ निर्णय न था तो अन्य साधनोंके ज्ञानकी अपेक्षा रहती है। उसके कुछ चिन्ह दीखे, कोई पानी भरते हुए आया दीखा अथवा आसपास कुछ खपरियां दीखीं तो ऐसी बातोंसे यहां जल है ऐसा निर्णय किया जाता है। तो जो पूर्वज्ञान अनभ्यस्त दशामें होता है अतएव वह अभी अप्रमाण है, तो उसकी प्रमाणताके लिए दूसरा ज्ञान बनता है। लेकिन इस विषयमें शङ्काकारने कुछ दोष दिया था कि अगर सम्वादी ज्ञानसे पूर्व ज्ञानकी प्रमाणता मानी जाय तो इसमें अनवस्था और चक्रक दोष आते हैं, वह भी बात ठीक

Report any errors at vikasnd@gmail.com

नहीं है, क्योंकि सम्वादी ज्ञानसे, द्वितीय ज्ञानसे पूर्वज्ञानकी प्रमाणताका निश्चय करके प्रवर्तन नहीं होता। सम्वादी ज्ञान परिणति नहीं करता किन्तु एक अवगम बन जाता है तब परिणति होती है। जैसे अग्निका रूप देखकर झट यह बोध होता है कि इससे ठंढ मिट जाती है। दूसरोंको देखा ना ठंढ मिटाते हुए तो सम्वादी ज्ञानसे तुरन्त निर्णय हो जाता। यहाँ दूसरेकी अपेक्षा नहीं करनी है, जिस विधिका जिस ज्ञानसे सम्बन्ध है उस विधिसे वह ज्ञान हो जाता है।

ज्ञानप्रामाण्यविधिसे विपरीतविधिमें प्रामाण्यकी असिद्धि– एक कहावत है कि 'यह तो बड़ी टेढ़ी खीर है' खाना मुश्किल है। उसका भाव क्या है? एक अंधा पुरुष था, उसको एक बालकने कहा - बाबाजी, हम खीर खिलायेंगे! उस अंधेने कभी खीर न खाई थी, तो वह पूछता है कि खीर कैसी होती है? खीर सफेद–सफेद होती है। उसने सफेद भी कुछ न देखा था, जन्मका अंधा था। फिर पूछता है— सफेद सफेद कैसी? तो लड़का कहता है बगुला जैसी! उसने बगुला भी कभी न देखा था। तो अंधा पूछता है कि बगुला कैसा? तो अंधेके सामने ऐसा टेढ़ा हाथ करके रख दिया और कहा कि बगुला ऐसा होता है। जब अंधेने टटोला तो कहता है अरे, रे रे, ऐसी टेढ़ी खीर हमें न चाहिए! ऐसी टेढ़ी खीर तो पेटमें गड़ेगी। भला बताओ खीरका तो बोध करान था, रससे बोध कराता तो ठीक था, पर उसने स्पर्शका और आकारका उदाहरण दे दिया। जिस पदार्थके ज्ञानका जो तरीका है उस तरीकेसे ज्ञान किया जाय तो ज्ञान होता है। यदि उस अंधे पुरुषको वह बालक यों समझाता कि बाबा जी देखो यह है खीर, इसे अपने हाथमें लो और खाकर देख लो कि खीर कैसी होती है। वह खा लेता तो परख जाता कि खीर ऐसी होती है और यह है सफेद! तो अंधा आंखसे न देखनेपर भी खीरकी सफेदीपनका अनुमान रखता। तो जितना हम आप सबके ज्ञान है और प्रवृत्ति है, हम दूसरोंको देखते हैं कि ये इस पदार्थका इस तरह उपयोग करते हैं और खुद भी उनकी परीक्षा कर लेते हैं तब फिर अभ्यास दशामें ज्ञान करते ही प्रवृत्ति करने लगते हैं।

दृष्टान्त और विवरण द्वारा अभ्यास व अनभ्यास दशामें प्रामाण्यके विधानका वर्णन जैसे रसोई बनाना हो तो झट रसोई घरमें घुस गए, चूल्हा जलाया, आटा सेंका और रोटी बना ली। उसमें कोई दिमाग भी लगाना पड़ता है क्या? कोई प्रमाणपना भी ढूँढना पड़ता है क्या? वह अभ्यस्त दशा है तो झट स्वयं ज्ञान हो जाता है, हाँ अनभ्यास दशामें परसे प्रमाण होता है। जैसे किसान लोग यदि ऐसे बीज पायें जिन्हें कभी पाया न था तो वह अनभ्यस्त दशा है, यह पता नहीं कि ये बीज उगेंगे अथवा नहीं, तो एक छोटेसे सकोरेमें थोड़ेसे दाने बोकर देखते हैं कि ये बीज उग सकते हैं या नहीं? उग गए तो वैसा ज्ञान कर लेते हैं न उगे तो वैसा ज्ञान कर लेते हैं, पर जिस बीजके सम्बन्धमें परिचय नहीं है उस बीजका प्रयोग

http://sahjanandvarnishastra.org/

करके पहिले परखते हैं, प्रयोग करनेके बाद यह बीज ठीक है अथवा नहीं है, ऐसी बात फिर उनके स्वतः होने लगती है। तो जैसे अभ्यास दशामें पहिले यह बीज ठीक है अथवा नहीं है ? ऐसा निर्धारण करनेके लिए प्रयोगकी अपेक्षा रखते हैं लेकिन बादमें चूँकि उसका सब कुछ परिचय पा लिया तो शेष रहे कणोंको यह बीज है अथवा नहीं है ऐसा निश्चय स्वयमेव कर लेते हैं और फिर यह बीज है तो उसके उपयोगके लिए प्रवृत्ति करता है और यदि बीज नहीं है तो उसके प्रयोगके लिए प्रवृत्ति नहीं करता है। इसी तरह हम परिचित स्थितिमें ज्ञान करते तो झट प्रगति कर लेते, प्रमाण हो जाते और अनभ्यास दशामें शीघ्र प्रगति नहीं कर पाते, अन्य ज्ञानसे उसमें प्रमाणता लेते हैं तब प्रगत्ति करते हैं। जैसे अपने घरकी सीढियोंपर दमादम झट चढ़ते और उतरते हैं, पर किसी अनजान जगहपर जायें तो कुछ परखकर देखकर चढ़ते उतरते हैं। ऐसी ही समस्त ज्ञानोंकी बात है। प्रमाण अभ्यास दशामें स्वतः और अनभ्यास दशामें परतः बनता है।

संवादी ज्ञानसे पूर्वज्ञानका प्रामाण्य माननेमें अनवस्था दोषका अनवकाश - शङ्काकारने जो यह बताया कि सम्वादी ज्ञानसे पहिले ज्ञानको प्रमाण मानने पर अनवस्था हो जायगा, एक ज्ञान हुआ इसकी प्रमाणताका निश्चय दूसरे ज्ञानसे हुआ तो दूसरे ज्ञानकी प्रमाणताका निश्चय तीसरेसे होगा, यों अनवस्था चलती जायगी, यह भी कहना यों ठीक नहीं है कि मान लो पहिला ज्ञान अप्रमाण रह रहा था, उसमें निर्णय न था। यदि द्वितीय ज्ञान निर्णायक बने तो द्वितीय ज्ञानसे प्रथम ज्ञानका भी निर्णय कर लिया और स्वयंका भी निर्णय किया। अनवस्थाकी वहाँ गुञ्जाइश नहीं है। किसी भी पदार्थका ज्ञान करनेके बाद जब अर्थक्रिया बन जाती, यहाँ इतना बड़ा संदेह क्यों ? जान लिया कि यह जल है, झट पीने चले गए। तो जल ज्ञानका फल है उसका उपयोग करना। तो उपयोग तो कर लिया और अब जल ज्ञानपर विवाद करें कि यह प्रमाण है या अप्रमाण है ? स्वतः प्रमाण है, परसे प्रमाण है और जब फल पा लिया तब उसमें घबड़ाना क्या ? ज्ञानका फल साक्षात् विसम्वादरहित अर्थक्रियाका आलम्बन करना हो गया, वह स्वयं प्रमाण है अन्य ज्ञान की वहाँ अपेक्षा नहीं होती। जानते हैं और जाननेके साथ ही यदि वह प्रवृत्ति ग्रहण के योग्य है तो ग्रहण कर लेना तजनेके योग्य है तो तज देते हैं अथवा उपेक्षा कर देते हैं। तब ज्ञानके फलका भी उपयोग कर लिया अब ज्ञानमें भी संदेह करना मूर्खता है।

जाग्रत दशामें हुए अर्थक्रिया ज्ञानको स्वप्न दशावत् मिथ्या समझने की आशङ्का—कोई ऐसी शङ्का करे कि स्वप्नमें भी अर्थ क्रियाका ज्ञान होता है। स्वप्नमें भी तालाब दिखना, तालाबमें खूब तैरकर स्नान करना आदि दिखता है जैसा कि जगते हुएकी हालतमें होता है। कोई फर्क नहीं रहा उस समय। जैसे जाग्रत दशा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

में कोई पेड़पर चढ़ने लगता ऐसे ही स्वप्नमें भी ऐसा ही प्रतीत होता है कि मैं पेड़पर चढ़ रहा हुँ। ठहरते हैं श्रम करते हैं, पैर फिसलते हैं ये सब अनुभव स्वप्नमें भी जागृत दशाकी तरह होते हैं। जैसे स्वप्नमें अर्थ क्रियाका ज्ञान होता है, पदार्थ नहीं है तब भी, ऐसे ही जागृत दशामें अर्थ क्रियाका ज्ञान झट हो जायगा। जैसे स्वप्नमें कुछ कामकर लेनेपर भी ज्ञान झूठा है इसी प्रकार जागृत दशामें भी अनेक कार्य होनेपर भी ज्ञानमें अयथार्थता होगी।

जाग्रत दशामें हुए अर्थ क्रिया ज्ञानको स्वप्नसम मिथ्या माननेकी असमीचीनता उक्त शङ्काका अब समाधान करते हैं --उक्त शङ्का ठीक नहीं है, क्योंकि स्वप्नकी दशा और जागृत दशामें बिल्कुल उल्टा आशय है स्वप्नमें जो किसी अर्थ कार्यका ज्ञान हुआ नहाना, धोना आदि किसी भी कामका जो ज्ञान हुआ वह तो बाधा सहित है, क्योंकि जगनेपर विदित हो जाता है कि वह ज्ञान झूठा था, पर जागृत दशामें तो स्वप्न जैसी बात नहीं आती है। अर्थ क्रियाका ज्ञान अर्थके बिना नहीं है। एक पेन्सिल छीली जाय और प्रयोग करले, फिर पेन्सिल न हो ऐसा किसीमें बोध हुआ है ? अर्थ क्रियाका ज्ञान अर्थ क्रियाके बिना नहीं होता। तो जब हम ज्ञान करके काम भी कर लेते तब भी हम सदेह रखें कि यह ज्ञान हमारा सही है या नहीं है या इसमें प्रमाणता अन्य उपायसे लाय। अब प्रमाणताकी क्या जरूरत ? अर्थ क्रिया कर ली, काम हो गया, यही तो सबसे बड़ा प्रमाण है। जो अर्थ क्रियाका कारणभूत ज्ञान है वह प्रमाण है। जिस ज्ञानके होनेपर हम उसका प्रमाण कर सकें वह प्रमाण है। यह पानी है यह जानना प्रमाण है, क्योंकि झट हम पी लेते हैं। पदार्थको जानकर उस पदार्थका जो हमें उपयोग करना चाहिए वह उपयोग हो जाय बस यही तो उस ज्ञानका फल है। यह प्रमाण है। जैसे अंकुरका जो कारण हो उसे बीज कहते हैं। गेहूं, चने ज्वार ये अंकुरके कारण हैं तो इनमें क्या संदेह करना कि इनमें अंकुर उगेगे या नही। अरे सीधा प्रयोग करके देख ला। कोई पुरुष संदेह करे कि अग्नि गर्म होती या ठंडी होती। तो ज्यादा विवाद न करके सीधा चीमटासे आग उठाकर उसके हाथकी गदेलीपर धर दे, तब उसे पता पड़ जायगा कि आग कैसी होती है। अगर कोई संदेह करे कि आग ठडी होती है या गर्म होती है तो उसे मूढ़ता ही कहा जायगा।

अर्थक्रिया ज्ञानसे ज्ञानप्रामाण्यमें स्पष्ट संवादिता जितने भी हम आपको ज्ञान होते हैं उन ज्ञानोंका फल है ग्रहण करने योग्यको ग्रहण करना, छोड़ने योग्यको छोड़ देना। सो ग्रहण भी करलें अथवा छोड़ भी दें और फिर भी हम ज्ञान के सम्बन्धमें विवाद करते रहें यह कहां तक ठीक है। तत्त्वज्ञान सम अन्य पदार्थोंका ज्ञान नहीं बन सकता। लेकिन मोह दशामें अन्य बाहरी पदार्थोंके ज्ञान तो स्पष्ट समझ में आते हैं। यह ठीक है, चश्मा है, पुस्तक है, सारी बातें स्पष्ट समझमें आ रहीं और

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जो समझने वाला है ज्ञान जिसने जाना है इन सबको वह ज्ञान समझमें नहीं आता। ज्ञान अपने ही प्रयोगसे अनुभवसे जो स्पष्ट प्रतीत हो सकता है उसको तो नहीं मानता और इन बाहरी पदार्थोंको जो भिन्न है, पर हैं, जिनमें हमारी अर्थक्रिया भी नहीं है स्पष्ट माना। बस यही तो संसारमें रुलनेका उपाय है। हम स्वयं क्या हैं, क्या करते हैं, कैसे रहते हैं इसका भान तो न हो और केवल बाहरी पदार्थोंका ही हम साम्य व्यवहार ज्ञान करते रहें तो उससे शान्तिका मार्ग नहीं मिलता।

अज्ञानमयी विपदाका अभिसार शान्तिका उपाय तो स्वयंको स्वयंमें मग्न कर लेना मात्र है, लेकिन जरा सी बातमें पर पदार्थ अनुकूल न परिणमें ऐसी कुछ स्थितियों में बड़ा संकट अनुभव करते है, मुझ पर बहुत बड़ी विपदा छायी है। अरे विपदा तो यह छाई हुई है कि अत्यन्त भिन्न पदार्थोंमें हम ममता रख रहे हैं, भिन्न पदार्थोंके प्रति हम आकर्षित हो रहे हैं, दूसरेके सुखमें हम सुख समझ रहे हैं, दूसरेका दुःख देखकर हम दुःखी हो जाते हैं, किसी अन्य दूसरेमें नहीं, किन्तु जिसे अपना परिजन माना उस दूसरेका दुःख देखकर दुःखी हो जाते हैं ऐसा जो विकल्प बन रहा है अन्तरङ्गमें संस्कार बन रहा है यह है मुझ पर बड़ी भारी विपदा। परपदार्थोंमें ऐसा हो गया तो क्या, अन्य प्रकार हो गया तो क्या ? वह कुछ भी विपदा नहीं है। मान लो कुछ धनमें कमी आ गयी, क्या ऐसा नहीं हो सकता था कि जो अब है उससे चौथाई ही आपके पास होता ? उतना ही उदय होता, इस ढङ्गसे होते ? कौनसी विपदा यह आ गयी जो यह विकल्प उठाया जा रहा है कि हम अब हीन हो गए, दीन हो गए, हमारी पोजीशन हल्की हो गयी। धन की कमी क्लेश नहीं देती, किन्तु जो कल्पना उठा ली गयी है ये भाव क्लेश दे रहे हैं। हम आप पर विपदा है अज्ञान की।

समस्त विपदाओंके टलनेका एक मूल उपाय—भैया! विपदाको टालनेके लिए हम अनेक यत्न करते हैं पर जिस प्रयत्नसे विपदा टलेगी उसको करते नहीं। जैसे कोई औषधि ऐसी होती कि जो १०० रोगोंपर चले। जैसे एक अमृतधारा, उसका प्रयोग कई रोगोंमें होता है तो कहते हैं कि बस एक अमृतधाराकी शीशी रख लो और चले जावो प्रवासमें शिरदर्द करने लगे तो लगा लो, पेटदर्द करने लगे तो दो बूंद पानीमें पी लो, चर्मरोग हो जाय तो प्रयोग कर लो। तो जैसे कोई औषधि सैकड़ों रोगोंकी एक है ऐसे ही समझिये कि सैकड़ों नहीं, समस्त संकटोंके मिटानेकी औषधि एक है, भिन्न-भिन्न नहीं हैं कि अमुक संकट इस औषधिसे मिटेगा और अमुक संकट इस औषधिसे मिटेगा। बेचैनी हो रही है तो उस संकटको मिटानेकी दवा और हुई, धनकी कमी आनेसे हुए संकटकी दवा और हुई, यहाँ ऐसी भिन्न-भिन्न दवा नहीं हैं। समस्त संकटोंके टालनेकी केवल एक ही दवा है। वह क्या ? स्वरूपका परिचय करके भेदविज्ञान द्वारा समस्त परसे हटकर अभेद ज्ञान स्वभावमात्र अपने आपके

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

निकट आ जाना। यही है समस्त संकटोंके मेटनेकी दवा।

धर्मपालनके आधारकी एकता धर्मपालनके लिए भी अनेक काम नहीं करना है। अनेक काम तो इस लिए किए जाते हैं कि संस्कार विरुद्ध लगे हुए हैं उनको मेटने के लिए जब हम एक दवापर अधिकार नहीं पा रहे हैं तो चलो कुछ तो उन विपदावोंसे उपयोग हमारा हटे इसके लिए पूजन है, दान है, त्याग है, जितने प्रकारके धर्मपालन किए जा रहे वे सब एक तरहके बचाव हैं। चाहे पूजा कर रहे हों चाहे सामायिक करते हों। धर्मपालनका ढङ्ग एक ही है और वह है एक अपने आपके स्वरूपके निकट रहना। जो यह कर सका उसने धर्म पाला। अब समझ लीजिए—घंटा भर भी भक्ति भावमें लगाया, श्रम किया तो इतना स्मरण रखे रहना कि धर्मपालन तो तब होता है जब बाह्य पदार्थोंके विकल्प हटकर केवल एक निज ज्ञान स्वभावमें मग्न रहा जाय।

धर्मपालन और उसका प्रभाव—भैया ! अपने उद्देश्यका स्मरण न भूलिए और इसका उपयोग प्रभु भक्तिमें यों कीजिए कि बजाय यहाँ वहाँ देखने दाखनेके अथवा अन्य प्रकारके विकल्पोंमें लगनेके ऐसा करें कि प्रभुके अनन्त चतुष्टय गुणका ध्यान करते जायें। प्रभु क्या है, हम जो स्तुति पढ़ते हों उस स्तुतिके अर्थपर ध्यान दिया जायगा; और वैसे ही प्रभुमें निहारियेगा तो उनके गुणोंका स्मरण होनेसे और उस ही भांति यह मैं आत्मा हूं ऐसा अपने आपका परिचय होनेसे अपने आपकी ओर आना हो जायगा, और अपने निकट आ सके तो इसीका नाम है धर्मपालन। यह खुद कैसा है जिसके निकट हमें पहुँचना है ? यह खुद है ज्ञानस्वरूप केवल ज्ञानानन्दमात्र अमूर्त भावस्वरूप सबसे निराला अपने स्वभाव मात्र ऐसा अपने आपको विदित हो तो यह परसे हटेगा और अपने निकट रहेगा। यही है धर्मपालन, इसीसे समस्त सङ्कट एक साथ कट जाते हैं।

अभ्यस्त और अनभ्यस्त दशामें अपने ज्ञानकी विशेषता—ज्ञान कैसा है, उसकी क्या वृत्ति है, वह प्रमाणभूत है, उसकी प्रमाणता कब किस प्रकार आया करती है ? इन सब प्रश्नोंका उत्तर इस दर्शनशास्त्रमें अनेक युक्तियों सहित दिया गया है। उसी प्रसङ्गमें यहाँ यह बात चल रही है कि जो ज्ञान हमारा अभ्यस्त होगा उस में प्रमाणता तो स्वयमेव आ जाती है और जो अर्थज्ञान अनभ्यस्त है जिसका हमें परिचय नहीं है, ऐसे ही नवीन अर्थका परिज्ञान हो रहा है तो वह अर्थज्ञान अनभ्यास दशामें है अतएव किसी अन्य ज्ञानसे प्रमाणभूत होता है। जहाँ कुछ शङ्का है, संदेह है वहाँ प्रमाणता परसे होती है। जहाँ एकदम ही सीधा अभ्यास ज्ञान बना वहाँ प्रमाणता स्वयमेव आया करती है। यह बात अपने ज्ञानकी चल रही है। ऐसा प्रमाणभूत ज्ञान हमारा स्वरूप है। हम अपने स्वरूपमें पहुँचे और अपनी ही कलाके द्वारा हम अपने आपका विस्तार बनायें। किसी बाह्य पदार्थसे मेरा भला होगा, इस भ्रमको

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

छोड़ दें। अपने आपके स्वरूपके निकट अधिकाधिक रहनेका प्रयत्न करें तो यही वास्तविक मायनेमें धर्मपालन होगा। उसी स्वरूपका इस प्रसंगमें वर्णन चल रहा है।

नेत्रेन्द्रियज ज्ञानकी भांति अन्येन्द्रियज ज्ञानोंकी भी प्रमाणता - मीमांसकोंने श्रोत्र इन्द्रियसे उत्पन्न होने वाले ज्ञानको अप्रमाण होनेकी आपत्ति की थी कि श्रोत्र इन्द्रियसे उत्पन्न होने वाला ज्ञान अप्रमाण है, क्योंकि उसका मेल चक्षु आदिक इन्द्रियसे नहीं बैठता यह भी कहना ठीक नहीं है। क्योंकि जब वीणा आदिकका कोई रूपविशेष देख लेते हैं तो उससे शब्दविशेषमें भी उसे शङ्का नहीं रहती। यह वीणा इस प्रकारका शब्द निकाल नेगी ऐसा ज्ञान हो जाता है और श्रोत्र इन्द्रियसे जो शब्दविषयक ज्ञान होता है उसकी अर्थक्रिया तो और ही है। जो राग सुने, शब्द सुने उससे जो भीतरमें अनुभव हुआ, मेरा काम बराबर उसमें चल रहा है, अर्थक्रियाका अभाव नहीं है श्रोत्रेन्द्रियज ज्ञानमें, सो उसमें भी प्रामाण्यकी सिद्धि स्वयं हो जाती है। जैसे किसी पदार्थका सुगन्ध लें तो वह तुरन्त प्रमाण हो जाता है कि नहीं? यद्यपि आंखोंसे नहीं दिखता फिर भी गंधका ज्ञान प्रमाण है, इसी प्रकार शब्द आंखोंसे नहीं दिखते लेकिन श्रोत्र इन्द्रियमें शब्दका ज्ञान बनता है और वह प्रमाण होता है। प्रमाणके लिये संशय, विपर्यय, अनध्यवसाय आदिक दोषोंका अभाव चाहिए, फिर वह ज्ञान प्रमाण है, जहाँ संशय होता है वहाँ तो किसी अन्य ज्ञानके सङ्गतिकी अपेक्षा होती है। जरा और निर्णय करें है क्या? और और इन्द्रियकी साधनकी जरूरत होती है, किन्तु जहां संशय आदिक नहीं है, ठीक सुन लिया, अब चिड़िया बोल रही है तो उसके शब्द सुननेमें आ रहे हैं। कोई यह कहे कि देख लूँ तब जानूँ कि यह चिड़ियाका शब्द है ऐसा विलम्ब तो नहीं होता, तो श्रोत्र इन्द्रियमें जो ज्ञात होता है वह श्रोत्र इन्द्रिय द्वारा अनुभूत है। वह प्रमाणभूत है।

निश्चयसे ज्ञानकी कार्यविधिका दिग्दर्शन— ज्ञानका काम है उसकी अर्थ-क्रिया हो जाना। कुछ भी हम जानते हैं तो किसी न किसी प्रयोजनसे जानते हैं। और ऊँचे चढ़कर ज्ञानका फिर कोई रागादिक प्रयोजन नहीं रहता। केवल जाननेके लिये जानना है। प्रत्येक क्रियामें ६ कारक हुआ करते हैं कर्ता, कर्म करण सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण हिन्दीमें २ कारक और बढ़ गए हैं सम्बन्ध और सम्बोधन। उसमें तो सम्बोधन कोई कारक नहीं है क्योंकि उसमें उद्बोधन मात्र है तथा सम्बन्ध कोई वस्तु नहीं है। लोगोंने अपनी ममताके अनुकूल सम्बन्ध बना रखा है। सम्बन्ध कुछ नहीं है। किसी पदार्थमें कुछ परिणति हुई तो किससे लिए हुई? उसका उत्तर आयगा, किसके द्वारा हुई? उसका भी उत्तर आयगा। किसने की? किसको की? इन सबके उत्तर आयेंगे पर सम्बन्धका कोई प्रश्न नहीं। एक वस्तुका दूसरी वस्तुके साथ सम्बन्ध होता है यह कारकमें नहीं है, क्योंकि जो भी परिणति हुई है वह खुदकी खुदमें हुई है, दूसरेसे सम्बन्ध कुछ नहीं है, अतएव सम्बन्ध कारक नही हुआ करता।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

दृष्टान्तपूर्वक अभिन्न षट्कारकता का वर्णन – कारक ६ होते हैं। प्रत्येक पदार्थका जो कुछ भी परिणमन होता है वह उसके ६ कारकोंमें हो जाता है। जैसे सर्प लम्बा चौड़ा था अब उसने कुण्डली बना ली, गोल हो गया तो सर्पने क्या किया? जो किया सो किया। किसको किया ? अपने आपको किया। अपने आपको ही लम्बे को गोल बना लिया। किसके द्वारा किया यह काम सांपने ? अपने ही द्वारा किया। कोई पुरुष पकड़कर तो उसमें कुछ नहीं कर रहा, लाठी आदिक यंत्रोंसे तो कोई उस मे कुछ नहीं कर रहा। सांप भी किसी दूसरे पदार्थका सहारा लेकर तो कुछ नहीं कर रहा। वह खुद अपने आपमें अपनी क्रिया कर रहा है तो किसके द्वारा किया ? अपने ही द्वारा किया। और इस प्रकारका जो गोल बन गया साँप वह किसके लिये बना ? उसे जो भी आराम हुआ, कष्ट हुआ वह सब असर साँपमें होगा। और वह सांप पहिले तो सीधा था, अब उस सीधी पर्यायसे हटकर कुण्डली पर्यायमें आया तो किससे हटकर आया ? अपने ही से हटकर आया। अपनी ही कोई परिणति थी जिससे हट कर वह कुण्डलीके आकार बन गया। तो अपादान भी वही हुआ और यह सब कार्य गोल मुद्रा सांपमें हुई। सो जैसे साँप कुण्डलीके आकार बन रहा तो उस कुण्डलीका कारक सांप स्वयं है। इसी प्रकार जिन जिन पदार्थोंका भी परिणमन होता है वे सब परिणमन उस ही पदार्थमें समाप्त होते हैं।

एकका दूसरेके साथ सम्बन्धका अभाव होनेसे स्वयंमें ही सर्वस्व — एकका दूसरेके साथ सम्बन्ध नहीं है। कोई पुरुष हाथसे कोई चीज उठाकर भी धरे उस हालतमें भी हाथने क्या किया ? इसपर कुछ यदि विश्लेषण किया जाय तो हाथ ने हाथमें क्रियाकी। किसको की ? अपने हाथको की। किसके द्वारा की ? अपने ही द्वारा। और ऐसा जो हाथका परिणमन हुआ यहाँसे वहाँ हिला डुला यह भी इसका प्रयोजन क्या ? स्वयं था। जो कुछ बीती, कष्ट हुआ, आराम हुआ या जो भी परिणति हुई वह उसके लिये हुई, और पहिले यह हाथ और तरहका था, एक जगह था, अब उसने गमन क्रिया की तो स्थिरतासे हटकर वह गमनमें आया तो यह हाथ उपादान हुआ और हाथने जो कुछ किया हाथमें किया। तो हाथका सब कुछ षट्कारकीय परिणमन हाथमें हुआ। ऐसी परिणति करते हुए हाथके बीच कोई चीज आयी तो उस परिणमते हुएका निमित्त पाकर चीज भी एक जगहसे दूसरी जगह पहुंची। अब उस वस्तुमें जो परिणमन हुआ, जो हाथके बीच फसी हो और एक जगहसे दूसरी जगह पहुँची हो उस वस्तुका षट्कारक परिणमन उस ही वस्तुमें है, अतएव किसी भी पदार्थका किसी दूसरे पदार्थके साथ सम्बन्ध नहीं है, इस दृष्टिसे देखा जाय तो आत्माने जो कुछ भी ज्ञान किया, जिस किसी भी पदार्थके विषयमें ज्ञान किया आत्मा ने जाना। किसको जाना ? निश्चयसे तो आत्मामें जो ज्ञानका परिणमन हुआ उस परिणमनको ही जाना, अपनेको ही जाना। निश्चयसे तो पर जाननका रूप इस प्रकार होता है वह ज्ञेयाकारको ग्रहण करता हुआ रहता है अतएव उपचारसे कहते

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हैं कि मैंने बाह्य पदार्थोंको जाना। जाना अपने आपको ही और उस जानन परिणति के समय करण कौन हुआ ? जिसके द्वारा जाना ? स्वयंके स्वरूपके द्वारा जाना।

निश्चयसे जाननके सम्प्रदायका निर्णय अब सम्प्रदान कारक देखिये ! जाननका फल क्या हुआ ? स्वयं, किसलिए जाना ? अपने लिए जाना ? ज्ञान होनेसे जो तुरन्त सन्तोष होता है, नि:शङ्कता आती है, स्पष्टता आती है वह खुद ही पर तो गुजरी, भले ही ज्ञान करके बादमें कुछ प्रवृत्ति करे अथवा निवृत्ति करे लेकिन किसी भ. क्रियाका फल निश्चयसे तो बादमें नहीं मिलता। प्रत्येक कार्यका फल क्रिया होने के समयमें ही मिलता है। बादमें क्रियाका फल मिलता है, यह कहना व्यवहार मात्र है। जैसे कुम्हार घड़ा बनाता है तो घड़ा बनानेकी क्रिया करते समय कुम्हारको फल मिल रहा है। क्या ? श्रम हो रहा, खेद हो रहा, सुख हो रहा, कल्पना कर रहा, जो कुछ भी उसमें गुजर रहा है उस समय जिस समय वह घड़ा बना रहा है वही फल मिला लेकिन लोकव्यवहारमें यह कहते हैं कि घड़ा बननेके बाद पकनेके बाद जब कुछ पैसोंका बिकता है, उसे पैसे मिलते हैं, उसका सामान खरीदता है तब मानते हैं कि इसे अब घड़ा बनानेका फल मिला। पर निश्चय सिद्धान्तसे तो जिस समय वस्तुमें क्रिया हुई उसी समय फल मिलता है और फिर भल भी भिन्न नहीं मिलता। फिर मिलना उस श्रमका फल नहीं है, यह तो एक अन्य वस्तुसे सम्बन्धित है। तो जैसे कुम्हारने जिस समय क्रिया की उसी समय उसे फल मिला, इसी प्रकार जितने भी प्राणी भाव करते हैं पुण्य भाव करें अथवा पाप भाव करें अथवा धर्म भाव करें भाव करते समय ही उसका फल मिल जाता है अवश्य मिलता है, मिलना ही पड़ता है। ऐसा ही सम्बन्ध है कि जिस समय क्रिया की जाय उसी समय उसका फल मिलता है।

निश्चयसे जीवके परिणमनका प्रयोजन याने फल वही और उसी समय—किसी पुरुषने पाप परिणाम किया। अब उसके फलमें उसे नरक जाना है। तो ऐसा कहना व्यवहार है कि पाप किया इस भवमें और फल मिला उस भवमें। पाप क्रिया जो कर रहा है प्राणी उस समयमें जो उसे अशान्ति है, मलिनता है वह फल तुरन्त मिल रहा है। इसी प्रकार कोई पुण्य करता है और पुण्यमें देव आयुका बंध किया, देव बनेगा तो लोकव्यवहारमें यों कहेंगे कि इसने पुण्य किया था देखो, उसका फल देवभवमें प्राप्त हुआ। लेकिन जिस ही समय उसने पुण्य परिणाम किया उस परिणामसे जो तुरन्त उसकी आत्मामें असर हुआ, प्रभाव हुआ वह है उस समय के पुण्य भावका फल और वह तुरन्त मिल रहा है। प्रत्येक क्रियाका फल निश्चयसे उस ही समय मिला करता है। किसी पुरुषने धर्म भाव किया, शुभ अशुभ भावोंसे हट कर केवल एक शुद्ध ज्ञानकी निर्विकल्प दृष्टि की, जिसमें राग द्वेषकी बात नहीं है ऐसा किसीने धर्म भाव किया तो लोग कहेंगे ऐसा कि धर्मके फलमें मुक्ति प्राप्त होती है। मुक्ति मिलेगी कई वर्ष बाद ! पर ऐसा नहीं है कि आज धर्म किया जा रहा हो और

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

फल मिले बहुत वर्ष बाद ! जितने अंशमें जितनी निर्मलतामें वह धर्मभाव कर रहा है उसका फल है शान्ति होना, तृप्ति होना, ये सब उसे तुरन्त मिल जाते हैं। तो निश्चय से प्रत्येक पदार्थकी परिणतिका फल उस हीमें है और अभिन्न रूपसे है । यों प्रत्येक पदार्थोंका षटकारक स्वयंमें है।

निश्चयसे ज्ञानकी षटकारकताका स्वयंमें निर्णय – जब हम जानते हैं कि उस समय हमने जाना, किसको जाना ? जैसे हम दर्पण देखते हैं और हम अपनी पीठ पीछेकी सब वस्तुवोंको जानते रहते हैं, उस दर्पणको देखते हुए हम यह कहते जाते हैं कि देखो अमुक यों हाथ हिला रहा है, यों पैर हिला रहा है। अमुक यों प्रवृत्ति करता है। तो जैसे हम यद्यपि देख रहे हैं उस दर्पणको पर बताते जा रहे हैं पीछे खड़े हुए लड़कोंकी चेष्टावोंको, इसी प्रकार यह ज्ञान परिणमता है, उस आकार ग्रहणरूप: जिस रूप बाह्यमें पदार्थ मौजूद है। तो निश्चयसे हम उस ज्ञेयाकार ग्रहण को ही कर रहे हैं, अपनेको ही जान रहे हैं, पर उसमें चूँकि विषयभूत बाह्य पदार्थ हुए हैं अतः कहते हैं कि हमने बाह्य पदार्थको जाना। वस्तुतः हमने अपनेको ही जाना। इसी प्रकार जब हम जानते हैं तो उसमें कुछ और की शक्ति नहीं मिलती। किसी औरका प्रभाव नहीं लेते हैं। वह सब जानना मेरा मेरे ही प्रभावसे मेरे ही ज्ञान स्वरूपसे हुआ करता है। तो जाननरूप क्रियामें करण भी हम हुए और जानकर भी हमने ही तुरन्त फल पा लिया। अशान्ति हो, शान्ति हो, संतोष हो जो कुछ भी गुजरे वह फल हमने अपने आपमें प्राप्त कर लिया और इस ज्ञानसे पहिले हम जिस स्थितिमें थे उस स्थितिसे हटकर इस ज्ञानमें आये हैं सो स्वयं ही उपादान हुए। इस प्रकार ये सब परिणमन मुझमें ही हो रहे अतएव मैं ही अधिकरण हूं। सर्व पदार्थों की यही बात है। इस तरह जानने वाले और अपने अन्तरङ्गमें श्रद्धान करने वाले जीव सम्यग्दृष्टि हैं। जिसे सम्यक्त्व जगा है वह नियमसे संसारके समस्त सङ्कटोंसे छूट जायगा। सम्यक्त्वके समान अन्त कुछ वैभव न समझिये।

क्लेशका कारण परमें, परभावमें आत्मीयताकी बुद्धि लोकमें कुछ अन्य ऐसा है ही नहीं; जो मेरे हितमें आये। कोई कुटुम्बी हो, बड़ा आज्ञाकारी मित्र हो अच्छे विनयशील सेवकजन हों। चाहे कितना ही वैभव हो पर ये कुछ भी शान्ति के काम नहीं आते हैं। केवल एक अपना तत्त्वज्ञान, सम्यक्त्व यही काम आता है। ऐसा क्यों ? इसलिए कि जितने भी दुःख हैं वे परपदार्थोंमें आत्मीयताका भ्रम करनेसे हैं। दूसरा कोई दुःख नहीं है। कोई किसी भी स्थितिमें हो उससे दुःख नहीं दुःख तो केवल परपदार्थोंमें आत्मीयताकी बुद्धि बनानेमें है। आज कल एक देश दूसरे देशसे लड़ते हैं और लड़ाईका वातावरण मिट नहीं पाता। इसका भी मूल कारण क्या है कि जो जिस देशमें बस रहा है वह उस देशको अपना मानकर उस देशकी तरक्कीमें, बढ़ोतरीमें लगा रहता है, उस देशके प्रति ममता बसी है जिसके कारण अनेक खटपट

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

करनी पड़ती हैं। उसके फलमें मिलता है क्लेश। जितने भी कलेश देश सम्बन्धी, घर सम्बन्धी हैं वे सब मोह–ममताके हैं। कोई बच्चा प्रतिकूल चलने लगा तो भाई इसमें क्लेशकी क्या बात है? जो जैसा है सो रहने दो। क्लेशकी बात तो यह है कि उस बालकमें यह बुद्धि जगी है कि यह मेरा है, इससे मेरा बड़प्पन है, ऐसी बुद्धि जगनेके कारण क्लेश होता है, उस बालकके प्रतिकूल होनेसे क्लेश नहीं होता है। तो क्लेश मात्र मोह–ममताका है।

मोहका ढाँचा मात्र विकल्प और भो देखलो! मोह–ममता केवल एक भाव ही ता है, कल्पना ही तो है, और कुछ चीज तो नहीं है। सोना चाँदीकी तरह कोई पिण्ड ऐसी तो नहीं है कि किसी तरह इसे निकालकर फेंक दिया तो लो रीते हो गये। मोह–ममता तो केवल एक भाव है। ऐसा मोह–ममताका भाव न रखें तो कहीं क्लेश नहीं है और मोह–ममता है तो वहीं आपत्ति है। लेकिन जब तक मिथ्यात्वका उदय है, कितनी ही कोशिश करे यह जीव, पर हृदयसे मोह नहीं टलता। सारे क्लेशोंकी जड़ है मोह, दूसरा कोई क्लेश नहीं है। इस १०, २०, ५० वर्षकी जिन्दगी में जिसमें माना है कि यह मेरा है भ्रमसे मान लो, फिर तो छूट जायगा ना सम्बन्ध। इतने समय भी भ्रम न करो तो उद्धार हो जायगा। लेकिन इतने ही वर्ष लोग गम नहीं खाते, अपनी बुद्धि स्वच्छ नहीं रखते। काल तो अनन्त है, ये १००–५० वर्ष क्या कुछ गिनती भी रखते हैं पर मोहबुद्धिसे जो कलङ्क लगा लिया, जो वासना बना ली वह हमें भव–भवमें दुःखी करेगी। यहाँकी कोई चीज अपनी बनकर न रहेगी। मरनेपर अथवा जीतेजी सब छूट जायेगों, अगर उनमें ममता है तो भव भवमें दुःखी करेंगी, तो संसारके सर्व दुःख हैं इस मोह–ममताके कारण।

मोह क्लेशसे छुटकारा पानेका मूल निधान— तो यह मोह ममता छूटे कैसे? उसका उपाय केवल एक ही वीतराग शासनमें बताया गया है तत्त्वज्ञान करें। भैया! यह ममता छुटाना है तभी पूरा पड़ेगा, उसी कीचड़में, उन ही विकल्पों में रमना ठीक नहीं है। हलाकि अबसे पहिलेके समयमें या अब तकके समयमें धन वैभव जोड़नेकी बड़ी इच्छा रहती हो, बड़ा प्रयत्न किया हो और वह संचित भी हो गया हो तो अब ऐसा न सोचना कि इसको बड़ी कठिनाईसे संचित किया है, यह कैसे छोड़ा जाय, इसका मोह कैसे छोड़ें? अरे भाई! करते रहो ऐसा परिणाम कब तक करोगे? और वह तो छूटकर ही रहेगा। भलाई इसमें है कि चीजके छूटनेसे पहिले हम स्वयं अपना परिणाम ऐसा बनायें कि हम उस वस्तुसे अपने आपको मुक्त ही निरख सकें। मैं तो इन सबसे छूटा हुआ ही हूँ।

सम्बन्ध कारकका अभाव—सम्बन्ध नामका कारक संस्कृतमें नहीं है। यह ठीक अध्यात्म शैलीसे निर्णय की हुई बात है। क्रियाका सम्बन्ध किसी परसे होता ही नहीं है इस कारण क्रियाके कारक ६ तो बताये पर सम्बन्ध कारक नहीं बताया। हो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

रहा है सब। किसको किया किसके द्वारा किया, किसके लिये किया ये प्रश्न होते हैं इनका समाधान निश्चयसे स्वयं मिलता है किसका कर रहा, यह कोई प्रश्न नहीं कर सकता, क्योंकि यह दृष्टिमें नहीं आ रहा कि कोई पदार्थ किसीका कुछ कर रहा है। किसीने गाली दी और दूसरा बुरा मान गया तो भले ही लोग कहें कि देखो इसने इसे दुःखी बना दिया मगर उसने तो अपने आपमें अपनी चेष्टाकी। चेष्टा यद्यपि उसने उस पुरुषकी निगाह रखकर की मैं इसको गाली दूं बुरा कहूँ। ऐसा उसने विकल्प बनाया तिसपर भी गाली देने वालेने केवल अपने आपमें विकल्प ही किया। उसने पर जीवमें कुछ नहीं किया।

तथ्यभूत ज्ञानका प्रभाव और उसके प्रामाण्यकी उपपत्ति भैया! हम आपका तथ्यभूत ज्ञान जगा रहे तो हम आप सबका बड़ा सौभाग्य है। यही सच्चा वैभव है। स्पष्ट भान रहे कि मेरा तो मात्र मैं ही हूं। और वह मैं ज्ञानस्वरूप हूं और ज्ञानका स्वभाव सम्वाद है निर्णय करना, निश्चय करना। अब वह निश्चय इस छद्-मस्थ अवस्थामें पर साधन पाकर होता है। अतएव हम आप सब लोगोंके प्रमाणकी उत्पत्ति इन्द्रिय और मनसे होती है। यद्यपि उपादान रूप कारण है वह स्वयं, लेकिन उत्पत्तिमें परकी अपेक्षा होती है। प्रमाण बन तो गया, ज्ञान बन तो गया। ज्ञान उत्पन्न होनेके बाद अब वह ज्ञान अपने कार्यमें लगे। जैसा जाना उस प्रकारकी अर्थ क्रियामें लगे, इस प्रकारकी जो प्रमाणता है वह अभ्यास दशामें तो स्वतः होती है और अनभ्यास दशामें परतः होती है। जहाँ इसका परिचय दिया है वहाँ उस बात को समझनेके लिये हमें कोई नया ज्ञान बनना होता है और उससे हम उसका निर्णय करते हैं।

ज्ञानका स्वभाव व वर्तमान ज्ञानकी परिस्थिति निरखकर परिणामों की निर्मलताका औचित्य भैया! अपना यह ज्ञान कैसा तो स्वभाव रखता है और इसमें कैसी सामर्थ्यसे परिणमता है और इसमें कैसी सामर्थ्य बसी हुई है, इन सब बातोंका निर्णय होना अपनी भलाईके लिये अत्यन्त आवश्यक है। हम जितना अधिक अपने ज्ञानके निकट आयेंगे उतना ही अपना भला कर सकेंगे। और जितना हम अपने स्वरूपको तजकर किसी बाह्य पदार्थोंमें फसते हैं, विकल्प बनाते हैं, उतना ही हम अपने आपको परेशान करते हैं कलङ्कित बनाते हैं जिसका फल तुरन्त ही हम अपने आपमें भोग लेते हैं। इस कारण परिणामोंकी विशुद्धि रखना, निर्मलता होना यह हम आप सब लोगोंके हितके लिये अत्यन्त आवश्यक है। उसीके उपायमें हम देव पूजा, गुरूपासना आदिक कर्तव्य पालनोंके बीचमें यह निर्णय बनायें, यह सब अपने ज्ञानस्वरूपके अनुभवके लिये किया जा रहा है। यह उद्देश्य हमारे ज्ञानमें रहेगा तो हम अपने हितके मार्गसे विचलित नहीं हो सकते।

संवादकत्वसे प्रामाण्यका निर्णय होनेके कारण अनवस्थाका अभाव—

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ज्ञानकी उत्पत्ति हम आप लोगोंको इन्द्रिय मन आदिक साधनोंसे होती है। यद्यपि उपादानसे तो आत्मासे ही निष्पत्ति होती है पर निमित्त कारणोंकी अपेक्षा परसे उत्पत्ति होती है। ज्ञानकी उत्पत्ति परसे होती है, दर्शन क्षेत्रकी बात चल रही है, तो ज्ञान ही प्रमाण कहलाता सो प्रमाणकी उत्पत्ति परसे समझिये, और प्रमाणमें होती है प्रमाणता सो प्रामाण्यकी भी उत्पत्ति परसे होती है, किन्तु भाट्ट नामके दार्शनिक प्रामाण्यकी उत्पत्ति स्वतः मानते हैं और इसकी पुष्टिमें वे विकल्प उठाकर पूछ रहे थे कि क्या दूसरा जो ज्ञान हुआ जिससे प्रमाणता जानी गई वह ज्ञान क्या उस ही एकका विषय करता है या भिन्नका विषय करता है। ऐसा विकल्प उठाकर परतः उत्पत्ति माननेका खण्डन किया था। उसके उत्तरमें कह रहे हैं कि यह विकल्प ठीक नहीं है। चाहे एकको ही विषय करे तो भी वह ज्ञान सम्वादक अवश्य है, जाननहार बन सकता है और किसी भिन्न पदार्थको विषय करे तो भी सम्वादक बन सकता है। जैसे अंधेरेमें आमका रसा चखकर हम रूपका ज्ञान कर लेते हैं, उस आमके रूपका अनुमान कर लेते हैं। तो एक ही पदार्थ है, एक ही विषय किया है रस ज्ञानका और उस ही पदार्थका जो रूप है उसे जान लिया अथवा रस भिन्न तत्त्व है, रूप भिन्न गुण है तो भिन्नको विषय करनेपर भी प्रमाण कर लिया यह ज्ञान इसे सही जानता है और यह पदार्थ सही जाननेमें आ रहा है ऐसे सम्वाद्य सम्वादकपनेका प्रामाण्यसे अविनाभाव है अन्य पदार्थसे नहीं। देखो बहुत दूर रखा हुआ कोई वीणा बाजा निरखनेमें आ रहा है तो उस वीणा बाजाका रूप देखकर किसीके तुरन्त उसके शब्द विशेषका ज्ञान हो जाता है कि यह अच्छा है उसके तार देखकर पतले लम्बे जहाँ जितने छुए हुए होना चाहिये उतने वहाँ छुवे हों, जहां अन्तर हो वहाँ अन्तर लिए हुए तारोंको देखकर शब्दका ज्ञान हो जाता है कि यह वीणा अच्छी है। तो एक बातको निरखकर दूसरेका ज्ञान हो जाय यह भी सम्भव है। जैसे धुवां देखकर यह ज्ञान हो जाता है कि यहां आग है। प्रयोजन यह है कि जहां संशय, विपर्यय, अनध्यवसाय न हो वह ज्ञान प्रमाण है। चाहे वह उस ही पदार्थको जाने, चाहे अन्य पदार्थको।

सम्वादकत्वसे प्रामाण्यका निर्णय होनेके कारण पूर्वोत्तरविकल्पोंका अनवकाश— इस प्रसंगसे सम्बन्धिक एक प्रश्न और किया था शङ्काकारने कि पहिले हमने किसी पदार्थको जाना, अब यह प्रमाण है ऐसा समझनेके लिये हमने दूसरा ज्ञान उत्पन्न किया तो यह बतावो कि दूसरे ज्ञानने ही पूर्व ज्ञानका विषय किया अथवा पूर्वज्ञानको विषय न करके कुछ अन्य समझा ? यह विकल्प करना भी ठीक नहीं है क्योंकि दूसरा जो सम्वादक ज्ञान हुआ है वह पूर्व ज्ञानको ग्रहण करे इसलिये प्रमाण नहीं है, किन्तु इसकी क्रियाको देखकर दूसरा ज्ञान प्रमाण व्यवस्थापित करता है। जैसे पहिले ज्ञानसे जाना कि यह पानी है, यह अनभ्यास दशा थी। थोड़ी देर बाद जाना कि यह पानी ही है और जाकर पी लिया, तो अर्थक्रिया हो गई। वह ज्ञान

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

प्रमाण है । तो कार्य विशेष होनेसे प्रमाणता आती है, चाहे वह पूर्व ज्ञानको विषय करे अथवा न करे, किन्तु युक्तिसे प्रमाणता आती है । ज्ञान प्रमाण है और उसकी प्रमाणताका निश्चय होता है उसका कार्य निरखकर । जैसे यह आग है यों दूरसे देखा और जरासा तिनका अग्निका उठाया तो पता पड़ गया कि यह आग ही है. दृढ़ता कैसे हुई कि आगका जो कार्य है वह भी दिखनेमें आ गया । यों कार्य निरखकर प्रमाणता आती है ।

संवादकत्वसे प्रामाण्यका निर्णय होनेके कारण संशयादिदोषोंके अभावके प्रसङ्गका अनवकाश – शङ्काकारने जो यह कहा था कि यों तो अन्य ज्ञानसे प्रमाण माननेपर फिर तो संशय विपर्यय कुछ न रहेगा । जैसे जिस समय सीपको चाँदी जान रहे तो उस कालमें चाँदी जान रहे हैं और थोड़ी देर बाद जो ज्ञान बनेगा वह यह निश्चय करेगा कि यह चांदी नहीं किन्तु सीप है । यों सही ज्ञान होनेपर पूर्वज्ञानका तो सम्बन्ध भी न रहा । फिर कभी वह अप्रमाण नहीं हो सकता क्योंकि ज्ञान क्षणिक हुआ । जिस समय सीपको चांदी जाना, जानकर यह ज्ञान नष्ट हो गया, फिर अप्रमाण कुछ नहीं रहा, यह आपत्ति देना ठीक नहीं है, क्योंकि प्रमाण और अप्रमाणका निर्णय करना युक्तियोंसे विवाद नहीं है यह बात देखकर किया जाता है कि यह बात ठीक ही है । तो ज्ञानमें जो दृढ़ता आती है यह सही ही है । ऐसा जो निर्णय होता है वह भी जब इन्द्रियमें दोष न हो, गुण हो तो उससे निश्चय किया जाता है । हमारे ज्ञानमें कोई दोष नहीं है, सब सही सही दिखता है, कांदला कांच आदिक दोष नहीं है, उससे जो ज्ञान होता है वह यथार्थ होता है ।

प्रामाण्यके निर्णयकी गुणोंपर निर्भरता - यह कहना शङ्काकारका ठीक नहीं कि भाई मिथ्या जाननेमें तो दोषकी अपेक्षा होती है पर सही जाननेमें किसीकी अपेक्षा नहीं होती दोषोंका अभाव है तो सही ज्ञान होगा, दोषोंका सद्भाव है तो मिथ्याज्ञान होगा | यह भी कहना ठीक नहीं है क्योंकि बाधक कारणोंके अभावसे और दोषोंके अभावसे जो तुम प्रमाणका निश्चय करते हो तो यह बतावो कि तुमने अभावको समझ कैसे लिया ? पहिले समझा या बादमें । पहिले तो समझा नहीं, और बादमें समझा तो पहिले प्रमाण कैसे बन जाय । मतलब यह है कि जैसे जब सूर्यका उदय होता है तो मेघ पटल बिखर जाते हैं ऐसे जब ज्ञानका उदय होता है तो ज्ञानकी अप्रमाणता नष्ट हो जाती है । यह ज्ञान तो प्रमाणताके स्वरूपको लिये हुए होता है फिर उपादान कारणोंका अभाव है, यह क्या तुम अभी समझते हो उसी समय ज्ञान जान रहा है या उत्तरकालमें बाधक कारण न आयगा इसलिये प्रमाण है ? उत्तरकालकी बात सर्वज्ञ जाने, हम लोगोंकी उसमें प्रवृत्ति नहीं है । क्या बाधक कारण इसलिये नहीं है कि अभाव है । तो अभाव तुम को है या सबको ? अपनेको तो है नहीं, सबकी गारण्टी नहीं । मतलब यह है कि ज्ञान

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

स्वरूपकी प्रमाणता लिये हुए है और वहां गुणकी अपेक्षा होती है जिस समय चित्तमें कोई अन्यायकी बात आ जाय, पापभाव आ जाय तो उस समय ज्ञान सही काम नहीं कर पाता और जब शान्त हो कोई चित्तमें विकार जागृत न हो अथवा गुणोंमें रुचि हो ऐसी शान्त अवस्थामें ज्ञानका विकास भली भांति होता है। तो यह सब निर्दोषता और गुणपर निर्भर है।

गुणोंकी विशद प्रसिद्धि— मुख्य प्रसङ्ग यहां यह है कि पदार्थमें यह शङ्काकार गुण नहीं मानता। पदार्थ तो पदार्थ है। जो है सो है। उसमें गुणकी क्या बात है। जैसा है वैसा न रहे, और भांति हो जाय. उल्टा हो जाय तो वह दोष है। दोष की तो सत्ता होती है पर गुणकी सत्ता नहीं है, यह बिना विचारे तो रमणीक है, लेकिन यह तर्क वस्तुके स्वभावको छू कर नहीं कहा गया है। प्रत्येक पदार्थ अपने अपने स्वभावमात्र है। स्वभावसे कोई पदार्थ रीता नहीं है। पुद्गल है उसमें रूप, रस गंध, स्पर्शका स्वभाव है, उसका मूर्तपनाका गुण है। जो स्वभाव है, जो उसका प्राण है, सर्वस्व है वही तो उसका गुण है। गुण और गुणीका भेद डालकर कहा जाता है, वैसे तो जो कुछ है वह एक है, अथवा जब सही अनुभवमें आता है तब एक संख्या भी नहीं रहती। जैसे एक आत्माके तत्त्वको देखिये आत्मामें गुण हैं या नहीं ? शङ्काकारकी मतिसे तो आत्मामें कोई गुण नहीं है। आत्मामें दोष तो हो सकते पर गुण कोई भी नहीं है। ऐसा शङ्काकार कह रहा है, पर यह तो बतलावो कि जो वस्तुका स्वरूप है स्वभाव है उसे क्या गुण न कहेंगे ?

आत्मस्वभावका, आत्माके अभेद गुणका निरूपण—आत्माका स्वभाव क्या है ? शुद्ध स्वभाव निरपेक्ष स्वभाव। आत्मामें अपने आपकी सत्ताके कारण होने वाला भाव क्या है ? उस आत्म स्वभावको जाननेके लिये चलें तो पहिले तो दोषोंके अभावरूपसे जाना जायगा क्योंकि यह स्वभाव दोषोंसे ढका हुआ है। तो इस स्वभाव से पहिले यों परखिये कि समस्त पर वस्तुवोंसे यह न्यारा है। फिर समझिये कि समस्त पर भावोंसे न्यारा है। रागद्वेष मोह आदिक जो भाव हैं उन भावोंसे जुदा है आत्माका स्वभाव। क्योंकि आत्माका स्वभाव तो आत्माके साथ सदासे है सदा तक रहते हैं, पर रागादिक भाव नहीं हैं, सदा तक न रहेंगे, परम्परासे अनादिकालसे भरे ही हैं, पर सदा तक न रहेंगे। तो आत्माका स्वभाव परभावों, विकारोंसे, रागादिक विभावोंसे जुदा है। यहां तक यह निर्णय हुआ कि यह मैं आत्मा पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल इन ६ प्रकारके पदार्थोंसे जुदा हूँ, और, यह मैं आत्मा रागद्वेष मोह विकल्प विचार वितर्क इन विकारोंसे जुदा हूँ।

आत्माके अपूर्ण ज्ञानस्वभावत्वका निषेध— कोई यहाँ यह कह बैठे— तब फिर जो हम आप लोगोंका ज्ञान होते हैं— मतिज्ञान, श्रुतज्ञान आदिक ये ज्ञान तो मेरे आत्माके स्वभाव होंगे। तो अब निर्णय करें यह कि ये भी मेरे स्वभाव नहीं

Report any errors at vikasnd@gmail.com

हैं। मेरा स्वभाव वह है जो भरपूर हो, अधूरा न हो। हम आप लोगोंके ये सब ज्ञान अधूरे चलते हैं। किसी भी पदार्थको हम पूरे तौरसे जान तो नहीं सकते। जो हमारी आंखोंके सामने है जैसे यह चौकी है तो क्या हम इस चौकीको जान रहे हैं ? चौकी यह आधा इंच मोटी है तो इसके भीतर क्या है क्या इसे भी हम जानते ? अथवा जिस भागको हम देख रहे हैं उसके विरुद्ध जो दूसरा भाग है उसे भी हम जान रहे हैं क्या ? नहीं जान रहे। तो किसी भी पदार्थको हम आप यहां पूरा जान ही नहीं सकते हैं। तो ज्ञानका अधूरापन स्वभाव नहीं है। स्वभावसे स्वयं ही बना हुआ हो। तो इससे मतिज्ञान, श्रुतज्ञान इनको आत्माका स्वभाव नहीं कहा गया है।

शाश्वत भावमें ही आत्माका स्वभावत्व— कोई पूछ बैठे कि केवलज्ञान तो आत्माका स्वभाव होगा तो अध्यात्यवेदी कहेगा कि केवल ज्ञान भी आत्माका स्वभाव नहीं है। ज्ञान तो स्वभाव है, पर ज्ञानावरण कर्मोंका क्षय होनेसे जो एक सर्वज्ञता प्रकट हुई है वह केवल ज्ञान आत्माका स्वभाव नहीं है क्योंकि आत्माका स्वभाव वह होता जिसमें आदि और अन्त न हो। जबसे आत्मा है तबसे हो, जब तक आत्मा है तब तक रहे वही तो आत्माका स्वभाव होगा। आत्मा है अनादिसे अतएव स्वभाव भी अनादिसे है, अनन्तकाल तक रहेगा। अब इस तरह परखकर लीजिए, क्या केवल ज्ञान सदाकालसे रहा आया है ? सदासे तो नहीं रहा, छद्मस्थ अवस्था थी और अधूरा ज्ञान था, घातिया कर्मोंका क्षय होनेपर यह तो अब प्रकट हुआ है, अनादि अनन्त नहीं है। आत्माका स्वभाव वह है जिसका आदि और अन्त न हो।

निर्विकल्प सहज ज्ञायकस्वभावमें आत्मस्वभावत्व—यह स्वभाव एक ज्ञानरूप, लेकिन थोड़ी देर बाद ही यह बात समझमें आती है कि ऐसा यदि एक पकड़े रहें उस ज्ञान स्वभावको, यह एक है इस रूपमें निरखते रहें तो उसमें निर्विकल्प स्वभाव ग्रहणमें न आयगा। स्वभावमें सीमा नहीं होती। जैसे जलका स्वभाव ठंडा है तो कहीं यह सीमा तो नहीं है कि घड़ेमें इतने जलका तो स्वभाव ठंडा है और इतने का गरम है ? तो जैसे जलका स्वभाव शीत मात्र है इसी प्रकार इस आत्माका स्वभाव सही विधिसे स्वभावरूपसे देखें तो यह उसका स्वभाव है, यह दूसरे आत्माका स्वभाव है ये व्यक्तियां न बन सकेंगी। जैसे इन्सान और इंसानियत। इंसानककी सीमा है, यह एक इंसान है, पर इंसानियतमें सीमा नहीं होती। जब हम मनुष्यत्व परखें तो उस की कहीं सीमा नहीं होती। इसी कारण कुछ लोग ब्रह्मको सर्वव्यापक मानते हैं। जैसे मनुष्यका सामान्य सब मनुष्यमें है। सर्व मनुष्योंमें व्यापने वाला मनुष्य सामान्य क्या किसी सीमाको लेकर चल सकेगा ? इसी प्रकार आत्मामें जो एक शुद्ध चैतन्य स्वभाव है वह क्या किसी आत्मामें बंधकर रहेगा ? अरे चित्स्वभावका सही तौरसे जब ज्ञान होगा तो किसी आत्मामें बंधा हुआ नहीं नजर आयगा किन्तु एक भावमात्र नजर आयगा। इसी दृष्टिसे अद्वैतियोंने केवल एक ब्रह्मको समस्त तत्त्व मान लिया।

स्याद्वादसे आत्मरूपका निर्णय— देखिये, स्याद्वादकी शैलीसे समस्त धर्मों का निर्णय किया जाता है। बतलावो यह आत्मा सर्वव्यापी है या थोड़ी जगहमें रहने वाला है? एक प्रश्न किया गया। जो स्याद्वादको नहीं मानते वे इनमेंसे एक उत्तर छाँटेंगे। जो है वह ब्रह्म ही है। कुछ लोग छाँटेंगे कि यह आत्मा देहमें ही बंधा है और वहां इस तरह छाटेंगे कि देहमें रहकर भी यह देहमें नहीं फैला है किन्तु बटके बीजकी तरह कहीं पड़ा रहता है और वह आत्मा इतनी तेजीसे चक्कर लगाता है कि हम आप यह समझते हैं कि इस देहमें यह पूरा आत्मा है। स्याद्वादशासन यह उत्तर देता है कि इस आत्माको जब तुम स्वभावदृष्टिसे देखोगे। स्वभाव है आत्माका चैतन्य केवल उस चैतन्य स्वभावसे देखेंगे तो आत्मा सर्वव्यापी है और जब इसको एक अर्थ क्रियाकी दृष्टिसे देखेंगे तो मेरे आत्माने मेरे अपने आपमें ही कुछ किया, इस दृष्टिसे देखेंगे तो वह आत्मा सर्वव्यापक समझमें न आयगा। वह देहमें ही मात्र है।

प्रकाशन और अनुभवनकी दृष्टिसे आत्माका आख्यान— अब आत्माके व्याप्तित्व व अव्याप्तित्वका उत्तर दूसरी दृष्टिसे लीजिए आत्मामें दो गुण हैं ज्ञान और आनन्द। ज्ञानका कार्य जानना है प्रकाश है और आनन्दका कार्य है मग्न होना, तृप्त होना, निराकुल होना जब हम आत्माको ज्ञान प्रधान दृष्टिसे देखते हैं तो अब प्रदेशकी दृष्टि न रखकर केवल ज्ञान प्रकाशकी दृष्टि रही और यह ज्ञान प्रकाश बाहर भी फैला है। जब केवल ज्ञान प्रकाशपर दृष्टि रखते हैं तो शरीरका भान नहीं रहता, जब ज्ञान प्रधान दृष्टिसे निहारेंगे तो आत्मा सर्वव्यापक नजर आयगा और जब आनन्द प्रधान दृष्टिसे देखेंगे तो आनन्द तो ज्ञानकी भांति बाहर फैला हुआ अनुभवमें तो नहीं आता। जैसे हम दो काम करते हैं—ज्ञान करते हैं और आनन्द पाते हैं तो ज्ञान तो हमें सवत्र होता है और आनन्द केवल अपने आप होता है। तो जब हम आनन्द प्रधान दृष्टिसे देखते हैं तो हमें आत्मा अपने आपके प्रदेशोंमें ही नजर आता है। लोग समझते हैं, जब चीजोंको जानते हैं तो ज्ञान फैला हुआ सा नजर आता है। वह गया यह ज्ञान। ज्ञानको जहाँ चाहे मिला दे। जैसी जलती हुई टॉर्चको जिधर मोड़ो उधर ही प्रकाश होगा इसी प्रकार ज्ञानभावको जिस ओर लगा दो उस ओर ही ज्ञान ज्योतिका विस्तार बनेगा। तो जैसे ज्ञानका होना हमें बाहरमें बहुत दूर दूर फैला हुआ सा समझमे आता है? क्या आनन्दका अनुभव हमें इस देहसे बाहर भी होता है? एक प्रदेश मात्र भी हमें बाहरमें आनन्द का अनुभव नहीं होता है। ज्ञानका फैलाव तो समझमें आता है पर आनन्दका फैलाव हमारी समझमें नहीं आता। चाहे आनन्दका परिणमन दुःख रहे सुख रहे अथवा शुद्ध आनन्द रहे वह केवल मुझे अपनी सत्तामें प्रतीत होता है। तो जब हम आनन्दकी दृष्टिसे निरखते हैं तो आत्मा सर्वव्यापक नहीं है किन्तु अपने आपके प्रदेशोंमें ही रहने वाला है। स्याद्वाद शैलीसे इसके दोनों उत्तर हो जाते हैं।

अनुभवकालमें ज्ञान स्थिति और व्यवहारकालमें प्रामाण्यका विवेचन

Report any errors at vikasnd@gmail.com

अब स्याद्वादसे सर्व प्रकारके उत्तर ले लेकर पदार्थका निर्णय कर लेनेके बाद जब अनुभवका काल आता है तो स्याद्वादका सहारा छोड़ दिया जाता है और वहाँ फिर युक्ति, विकल्प, विचार कुछ भी नहीं ग्रहण किए जाते हैं । केवल अनुभव रस ही अनुभवा जाता है । यों यह आत्मा अपने स्वभावको परख करके कैसे अपने आपमें मग्न होता है वे सब विधियां इस तत्त्वज्ञानीको ज्ञात होती हैं । उन्हींमेंसे प्रथम प्रसङ्गमें यह बात कही जा रही है कि हमारा स्वरूप है ज्ञान और ज्ञान प्रकट होता है पर साधनसे और उसमें प्रमाणता भी आती है गुणवान इन्द्रियसे और जब यह ज्ञान अभ्यास दशामें लगता है तो प्रमाण स्वतः है और जब अपरिचित चीजको जानते हैं तो उसकी प्रमाणता परसे प्रकट होती है। यों ज्ञानको प्रमाणरूप परसे भी बताया और स्वतः भी बताया ।

प्रमाणकी उत्पत्ति स्वतः ही माननेकी शङ्काके हृदयका समर्थन — मिथ्याज्ञानकी उत्पत्ति साधनोंके दोष होनेके कारण होती है और सम्यग्ज्ञानकी उत्पत्ति साधनोंमें गुण होनेके कारण होती है । इन्द्रिय और मन स्पष्ट निर्मल हों तो सच्चा ज्ञान बनता है और इन्द्रिय और मनमें कोई दोष है तो मिथ्याज्ञान बनता है । सम्यग्ज्ञानका नाम प्रमाण है, मिथ्याज्ञानका नाम अप्रमाण है । इस सम्बन्धमें शङ्काकार यह कह रहा था कि सम्यग्ज्ञान तो खुद हुआ करता है खुदके साधनोंके द्वारा, पर मिथ्याज्ञान की उत्पत्तिमें कारण दोष होता है । इन्द्रिय और मनमें गुण कुछ नहीं होते, इन्द्रिय और मन साफ रहें निर्दोष रहें यह तो इन्द्रिय और मनका स्वरूप है । जैसे चौकी साफ है तो चौकीमें सफाईका गुण नहीं है, किन्तु चौकीका स्वरूप है वह कि जैसा है वैसा है । यदि इस इस चौकीपर कबूतर आदिककी बीट पड़ी हो या कोई गर्दा पड़ी हो तो चौकीमें जो यह मलिनता आयी वह दूसरे पदार्थसे आयी, पर चौकीमें सफाई होना किसी दूसरेके कारण नहीं है, वह तो चौकीका ऐसा स्वरूप है । इस प्रकार वे अप्रमाणको तो परसे उत्पन्न मानते हैं और प्रमाणको स्वतः उत्पन्न मानते हैं और प्रमाणसे स्वयं उत्पन्न होनेमें वे युक्ति यह देते हैं कि बाधक कारणोंका अभाव हो, दोषोंके ज्ञानका अभाव हो तो स्वयं प्रमाण बन जाता है ।

बाधकग्रहणभावरूप बाधकाभावकी मीमांसा—उक्त शङ्काके समाधानमें शङ्काकारसे पूछा जा रहा है कि बाधक कारणोंका अभाव या दोषोंके ज्ञानका अभाव इसका अर्थ क्या है ? बाधक ग्रहणमें न आये, इसीका नाम क्या बाधकका अभाव है या बाधकके अभावका निश्चय है इसका नाम बाधकका अभाव है ? यदि यह कहोगे कि ज्ञानमें बाधा देने वाले कारणोंका अभाव होनेका नाम बाधकाभाव है तो जहां विपर्यय ज्ञान होता है, जैसे पड़ी तो है सीप और जान लिया चांदी, तो उस समय बाधक कारण तो कुछ नहीं है ना ! जिसको भ्रान्त ज्ञान होता है तो भ्रमके समयमें उसे कोई बाधा नहीं जचती । पड़ी हो रस्सी जान ली जाय साँप, तो जिस समय कोई पुरुष रस्सीमें साँपका ज्ञान कर रहा है क्या उसके चित्तमें उस समय यह सन्देह

है कि यह साँप लगता तो नहीं है ? वह तो दृढ़तापूर्वक कह रहा है कि यह साँप है, यह चांदी है। तो विपर्यय ज्ञान होनेके समयमें बाधक कारण नहीं रहता तो ऐसा झूठा ज्ञान भी प्रमाण बन जायगा। शायद यह कहो कि झूठे ज्ञानमें उस समय तो बाधा देने वाला ज्ञान उत्पन्न नहीं होता, पर थोड़ी देर बाद हो सकेगा तो इस ज्ञानमें इस समयमें भी बाधा नहीं है और आगे भी न होगी। यह अन्दर कैसा है इस बातको तो सर्वज्ञ जाने हम तो नहीं जान सकते उस समय, जिस समय सीपको चांदी समझ रहे हैं। मिथ्या ज्ञान होनेके समय कोई यह नहीं जानता कि इस ज्ञानमें आगामी काल में क्या बाधा आयगी ? समझे कोई तो मिथ्या क्या रहा ?

बाधकज्ञानाभावनिश्चयरूप बाधकाभावकी मीमांसा—यदि यह कहो कि नहीं बाधा देने वाले ज्ञानके अभावको निश्चयका नाम बाधकाभाव है, इससे प्रमाणता आती है तो यह निश्चय क्या सम्यग्ज्ञानमें लेनेसे पहिले बनता है या बादमें ? यदि कहो कि पहिले बनता तो भ्रान्त ज्ञानमें भी प्रमाणता आ जायगी, क्योंकि ज्ञान होनेसे पहिले ही इसमें कोई बाधक कारण नहीं है यह जाना जाने लगा। यदि कहो कि सम्यग्ज्ञानमें प्रवृत्ति होनेके बाद बाधक कारणोंके अभावका निश्चय हुआ याने जैसे जाना कि इस ओर पानी है, फिर वहाँ जाकर पी चुके पानी, उसके बाद यह ज्ञान हुआ कि हमारा ज्ञान ठीक था, उसमें बाधक कारणका अभाव था। बाधक कारणके अभावका निश्चय कार्य कर चुकनेके बाद यदि होता है तो वह व्यर्थ है। कार्य तो कर चुके। जिसके लिए जाना था वह काम तो हो चुका, अब अभावके निश्चयकी भी क्या जरूरत रही ?

ज्ञानमें बाधकाभावनिश्चयके कारणकी मीमांसा–अच्छा बताओ बाधक के अभावका निश्चय किस कारणसे होगा ! क्या अनुपलब्धिके कारण होगा अर्थात् जो हम जान रहे हैं कुछ भी उस ज्ञानमें कोई बाधा देने वाला दूसरा ज्ञान कहीं बनता है कि इसका निश्चय बाधक नहीं है इस कारण निश्चय होगा ! यों हो तो निश्चय क्या सबको हुआ तब काम बना या अपने आप हुआ तब काम बना ! सबको तो निश्चय हुआ यह बात सर्वज्ञ जाने, और अपनेको हो तो दूसरेके चित्ताकी बातके साथ इसमें अनेकान्त दोष आता है इस कारण पूर्वज्ञान प्रमाण है यह इन्द्रिय और मनके गुणोंसे जान लिया जाता है स्वतः नहीं। यदि यह कहो कि दूसरा सही ज्ञान बने उससे प्रमाणता आयी तो अनवस्था हो गया। यदि यह कहो कि नहीं तीन चार ज्ञान पैदा होते हैं एक ज्ञानकी प्रमाणता लानेके लिए, फिर आगे जरूरत नहीं होती, इस कारण उसकी प्रमाणताके सिलसिलेमें और आगे ज्ञान नहीं होते हैं यह भी बिना बिचारे कहा है। अरे कोई ज्ञान हो वह यदि प्रमाणरूप है तो उसी ज्ञानसे निर्णय हो जायगा कि ठीक है। शायद न ज्ञानका निर्णय हो सके दूसरा ज्ञान बनेगा वह यदि दृढ़ है तो अपने ज्ञानकी प्रमाणताका निश्चय कर लेगा और पूर्वज्ञानकी भी प्रमाणता

http://www.jainkosh.org

का ज्ञान दोषोंसे नहीं हुआ करता, ज्ञानतो गुणोंसे होता है। ऐसी बात नहीं कि दुनिया में दोष तो सदा हैं और गुण कुछ चीज नहीं है दोष न हो इसीका नाम गुण है ऐसा नहीं। गुणमें अर्थक्रिया होती है। जैसे दोषका प्रभाव पड़ता है ऐसे ही गुण का भी प्रभाव पड़ता है। तो गुण भी है और दोष भी है। यदि गुण न माना जाय तो बतावो ये शास्त्र कैसे प्रमाण बनेंगे ? कोई गुणवानके द्वारा रचे गए हैं तब तो उन्हें प्रमाण कहते हैं। गुण कोई चीज न मानें तो फिर प्रमाणकैसे बन गया ग्रन्थमें ? व्यवहारमें भी हम आप यह कहते कि उसकी बात तो हम प्रमाण मान लेंगे क्यों मान लेंगे ? उसके प्रति हमें विश्वास है कि वह सच्चाई ईमानदारी आदिक गुण वाला है। गुण कोई चीज कैसे नहीं होती है। गुणोंसे ही प्रमाणता आती है और दोषमें अप्रमाणता आती है। यों इस परिच्छेदमें प्रारम्भमें ज्ञानका प्रमाणका स्वरूप कहा गया है और प्रमाणके स्वरूपका वर्णन करने वाला यह परिच्छेद अब समाप्त होने वाला है।

स्वपरव्यवसायी ज्ञानके प्रमाणत्वका परिच्छेद इसमें प्रामाणिक ज्ञान का स्वरूप बताया है, वह ज्ञान प्रमाण होता है जो ज्ञान स्वयंका भी निश्चय रखता है और परपदार्थका भी निश्चय रखता है। जैसे म आप सैकड़ों हजारों वस्तुवोंको रोज-रोज जानते हैं। जान लिया यह घड़ी है तो ऐसा जाननेके साथ ही घड़ी है यह भी ठीक है और यह घड़ी है ऐसा जो मुझमें ज्ञान बना है यह भी ठीक है। दोनों वातोंमें दृढ़ता ज्ञानमें रहती है। जिस ज्ञानसे पदार्थको जाना हो उसकी पक्काईमें सन्देह हो ऐसा नहीं होता। यदि पदार्थको जानने वाले ज्ञानमें सन्देह है तो पदार्थके ज्ञानमें भी सन्देह होगा। यह पदार्थ पदार्थ है कि नहीं। ज्ञानकी प्रमाणताके साथ ही साथ पदार्थके ज्ञानकी प्रमाणता आया करती है और ज्ञान स्वयंपर बीतता है यह तो अपने लिये प्रत्यक्ष हो रहा है। और चाहे इसे कोई जान न सके पर खुदपर बीतता हुआ यह ज्ञान चलता है इस कारण प्रत्यक्ष है।

ज्ञानाधिकरण आत्मामें ज्ञानसूक्ष्मतापरिज्ञानार्थ कर्म, विभाव आदि की चर्चा आत्मामें ज्ञान है ना और जहां आत्मा है वहाँ रागद्वेष भी है ना और जहाँ आत्मा है वहां रागद्वेष भी है ना और जहाँ आत्मा है वहाँ ज्ञानावरणादिक ८ कर्म भी लगे हैं ना। और देखिये - ज्ञानावरणादिक जो ८ कर्म लगे हैं वे मूर्तिक है, पुद्गल है, रूप, रस, गंध, स्पर्श वाले हैं पिण्डरूप हैं और आत्मामें जो रागादिक विकार होते हैं उनमें रूप, रस, गंध, स्पर्श हैं क्या ? किसीका प्रेम सफेद हो, लाल पीला हो ऐसा है क्या ? जो भी विकार होते, मोहादिक मोह होते उनमें रूप, रस, गंध, स्पर्श नहीं है। तो अब बतलावो कि रागादिक विकार स्थूल चीज हुए या कर्म स्थूल हुए मुकाबलेतन ? आत्मामें जो रागद्वेष मोह, क्रोध, मान, माया, लोभ विकार बनते हैं उनसे स्थूल हैं कर्म क्योंकि कर्मोंमें रूप, रस, गंध, स्पर्श हैं, वे पिण्डरूप हैं और ज्ञान रागादिक विकारोंसे भी सूक्ष्म है, रागादिक विकार तो पुद्गल कर्मके उदय

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

से उत्पन्न होते हैं। उनमें बन्धन होता है। वे उपचारसे मूर्त कहे जाते हैं। पर ज्ञान भाव केवल जानकारी मात्र ये रागादिक विकारोंसे भी सूक्ष्म हैं। लेकिन यह तो बतलावो कि मोटा है कर्म। किसीने देखा है अपने आत्मामें कि यह ज्ञानावरण मुझमें चिपका है, यह दर्शनावरण लग गया है यह अमुक कर्म मुझमें है, किसीने ऐसा देखा है क्या? लिखा है शास्त्रोंमें। जानते हैं ऊँचे अवधिज्ञानी और केवलज्ञानी, लेकिन हम आपके ज्ञानमें कर्म नहीं आ रहे, श्रद्धासे, युक्तिसे कह रहे हैं। चूंकि हमारा ज्ञान प्रकट नहीं हो रहा है, तो जिस कारणको पाकर ज्ञान प्रकट नहीं हो पा रहा है उस कारणका नाम ज्ञानावरण है। यह युक्तिसे कहा, शास्त्रोंकी श्रद्धासे कहा, पर जैसे हम इन बाहरी पदार्थोंको प्रत्यक्ष रूपसे देखते हैं, सांव्यवहारिक ढंगसे निरखते हैं क्या इस प्रकार कोई ज्ञानावरणादिक कर्मोंको भी देख लेता है? ध्यानमें पूजनमें रोज कहते कि हे नाथ मैं इन अष्ट कर्मोंको नष्ट करूँ। ये कर्म दिखते नहीं, ज्ञानमें नहीं आ रहे, पता नहीं, पर श्रद्धासे, युक्तिसे कह देते हैं।

रागादिक विकारोंकी कर्मोंसे भी सूक्ष्मता– कर्मोंका स्पष्ट भान किसी को नहीं है, लेकिन जो रागादिक विकार कर्मोंसे भी सूक्ष्म है वे सबके भानमें स्पष्ट हैं। रागभाव किसीके प्रति उत्पन्न हो तो यह खुद जानता है कि मुझे राग हुआ प्रेम हुआ, द्वेष हुआ। तो रागादिक विकार खुदके भानमे रहते हैं, और चाहे कोई इस प्रकार रागादिक विकारोंका भान न कर सके फिर भी खुदमें अनुभव हुए बिना, रागादिक भावोंका खुदमें क्षोभ हुए बिना तो रागादिक होते ही नही। तो कर्मोंसे यद्यपि रागादिक विकार सूक्ष्म हैं फिर भी रागादिक विकारोंका भान हम कर लेते हैं किन्तु कर्मोंका भान नहीं कर पाते।

प्रामाण्यके विषयमें चर्चित ज्ञानकी रागादिविकारोंसे भी सूक्ष्मता— रागादिक विकारोंसे भी सूक्ष्म है ज्ञान। सो ज्ञान हमपर खुदपर आता है, यह यहीं बीतती है, यहीं की परिणति है, सो हम ज्ञानका भी भान प्रत्यक्ष कर लेते हैं पर पौद्गलिक कर्मोंका हम भान नही कर पाते। तो इससे यह स्पष्ट हुआ कि हममें हमारी जो परिणति होती है वह चूँकि मेरे अनुभवनके साथ ही बनता है अतः उस का हमें भान रहता है, अन्य चीजका नहीं। तो जो ज्ञान उत्पन्न होता है वह स्वपर को जानता हुआ उत्पन्न हुआ करता है, वह ज्ञान सम्यग्ज्ञान है तो प्रमाण है और मिथ्याज्ञान है तो अप्रमाण है। जिस ज्ञानमें संशय, विपर्यय अनध्यवसाय हो वह ज्ञान अप्रमाण है। तो जिस ज्ञानमें प्रमाणता आती है वह प्रमाणता स्वयमेव होती है या किसीपर साधनसे होती है? उसके निर्णयमें इस परिच्छेदका यह अंतिम सूत्र चल रहा है कि भाई जहाँ हमें पदार्थोंका परिचय है वहाँ तो स्वतः प्रमाणता आ जाती है और जहाँ परिचय नहीं है, अनभ्यास है वहाँ परसे प्रमाणता आती है। यों प्रामाण्य की उत्पत्ति स्वतः भी है और परतः भी है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पूज्यश्री प्रभाचन्द्राचार्यका आशीर्वचन – इस परिच्छेदके अन्त में श्री प्रभाचन्द्राचार्य जिन्होंने परीक्षामुखसूत्रकी उत्तम टीका की है वह प्रभुस्तवनके रूपमें अथवा अपने अन्तिम आशिषके रूपमें भक्त और भव्यजनोंके प्रति मित्रताका भाव सूचित करते हैं। वह श्लोकका भाव इस प्रकार है :—

हे भव्य जनो ! तुम सब श्री वर्द्धमान तीर्थङ्कर परमदेवका ध्यान करो। कैसे हैं वे जिनेन्द्र जो स्वयं प्रमाणरूप हैं, उनका ध्यान किस प्रकारके बुद्धिमान जन कर पाते हैं, जिनकी बुद्धि सम्यक् है, सुधी है। ध्यान कहां करे ? अपने चित्तमें। जैसे जहाँ जिस समय सूर्य आ जाता है वहां अंधकार नहीं ठहरता इस ही प्रकार जिस चित्त में जिनेन्द्रदेवका स्वरूप विराजमान होता है, प्रभु विराजते हैं प्रभुगुणोंके स्वरूपका स्मरण रहता है उस चित्तमें विषय कषायोंका अंधकार ठहर नहीं सकता जिनेन्द्रदेव को, श्री वर्द्धमान प्रभुको किस प्रकार विचार करें ? युक्तिसे, ज्ञानप्रधान दृष्टिसे। वे त्रिसलाके नन्दन हैं, सिद्धार्थके लाड़ले हैं, इन गीतोंके लिए नहीं कहा जा रहा है, वह तो एक संसारकी लीला है। हर एकके मां बाप होते हैं। उससे इस भव्यका कोई प्रयोजन नहीं है। यह तो प्रभुको ज्ञानप्रधान स्वरूपसे चिन्तन कर रहा है। कैसे हैं वे प्रभु ? जीवनमुक्त हैं। यद्यपि वे इस समय सिद्ध हैं, पर तीर्थङ्करके रूपमें स्मरण किया जा रहा है तो वह तीर्थङ्कर जीते हुए भी मुक्त हैं। यद्यपि शरीरसहित होते हैं अरहंतदेव, लेकिन जब ज्ञानावरणादिक घातिया कर्मोंका क्षय हो जाता है तो वे मुक्त ही कहे जाते हैं।

कलङ्करहित सर्वतोभद्र विद्यानन्दमय वर्द्धमानदेवका स्मरण— ये प्रभु समस्त मनुष्योंके ज्ञानोंको उत्पन्न करनेवाले हैं, शीघ्र ही उत्पन्न करते हैं। निमित्त दृष्टिसे प्रभुशासन भव्य जीवोंको ज्ञानोत्पादक कहा गया है। ये प्रभु अकलङ्कके आश्रय हैं। कोई कलङ्क इनमें नहीं है और अकलङ्क प्रभु साधु, मुनि हुए हैं, आचार्य कहलाये हैं। जिनका तत्त्वज्ञान बड़ा विशाल था। किसी भी साधुके प्रति भक्ति तब ही उमड़ सकती है जब साधुके गुणोंका परिचय हो। अकलङ्कदेव आचार्य कैसे निर्मल विविक्त परोपकारी साधु थे ? सो लोग अकलङ्क नाटकके अध्ययनसे अकलङ्कदेवका महत्त्व जानते हैं पर उनका ज्ञान कितना अगाध था, उनकी रचनाएँ राजवार्तिक आदिक ग्रन्थोंमें जिन्होंने पढ़ी हैं वे अकलङ्कका महत्व कुछ कूत सकते हैं। ऐसे अकलङ्क मुनि जनोंके जो आश्रयभूत हैं अथवा अलङ्क हैं, द्रव्यकर्म, अष्टकर्म, उनका अभाव हो सो अकलङ्क है, उसके जो आश्रयभूत हैं ऐसे ये वर्द्धमान प्रभु ये सब जनोंके मनको आनन्दित करने वाले हैं और किस प्रकार आनन्दित करते हैं कि विद्या अर्थात् केवलज्ञान आनन्द अर्थात् सुख और चारों ओरसे भद्र कल्याण मङ्गलरूप इन गुणोंसे दूसरे जीवों को भी आनन्दित करते हैं। देखो विशुद्ध ज्ञान जगनेपर जो आनन्द जगता है वह आनन्द इन्द्रियके विषय कितने भी भोगे जायें उनमें भी प्राप्त नहीं होता। एक बालक

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

किसी गणितका सवाल हल कर लेनेपर जितना खुश होता है उतना खुश तो बड़ी मिठाई खानेपर भी नहीं हुआ करता। तो समन्तभद्र परमात्मा कल्याणरूप हैं ज्ञान और आनन्दके गुणोंसे जो समस्त जीवोंको आनन्दित करनेके कारण बनते हैं ऐसे वर्द्धमान स्वामीको हे भव्य जीव ! सदैव अपने चित्तमें चिन्तवन करो।

वर्द्धमानवन्दनके समय उनके शासनके अनुयायी समन्तभद्र अकलङ्क व विद्यानन्दिका स्मरण कैसे हैं प्रभु ? दोषोंसे रहित हैं और परमागमके विषयभूत हैं। हम युक्तियोंसे और अपने आपके स्वरूपके अनुभवसे वर्द्धमान स्वामीके गुणों को पहिचान सकते हैं। उनके वचन प्रमाणरूप हैं। प्रमाण तो वे प्रभु ही हैं। उनकी ज्ञान लक्ष्मी और उनकी दिव्य ध्वनि वे सब प्रमाण स्वरूप हैं। ऐसे प्रमाण स्वरूप वर्द्धमान स्वामीको हे भव्य जीव ! तुम भक्तिसे चित्तमें चिन्तवन करो। यहाँ वर्द्धमान स्वामीके गुणोंका वर्णन करते समय तीन आचार्योंके नाम भी आ गए हैं। अकलङ्क देव, विद्यानंदी और समन्तभद्राचार्य। ये तीनों ब्राह्मण थे। अकलङ्कदेव और विद्यानन्दी तो ब्राह्मण थे ही, समन्तभद्र स्वामी भी क्षत्रिय हों या ब्राह्मण हों। इनका ज्ञान बड़ा उत्कृष्ट था। जैन शासनके प्रवाहक क्षत्रिय और ब्राह्मण वर्गमें विशेषतम हुए। यह तो एक जैन शासन है, जो जीव इसका आदर करेगा वह इसका फल पायगा। वे दर्शन शास्त्रके उत्कृष्ट विद्वान थे। इनका चरित्र सुननेसे ही हृदय निर्मल होता है और उनकी भक्तिके लिये हृदय गद्‌गद् हो जाता है। उन तीनों आचार्योंके नाम भी प्रभुके विशेषणोंके रूपमें रखे गए हैं. अथवा स्मरण किए गए हैं। ऐसे श्री वर्द्धमान जिनेन्द्रदेवको सदा चित्तमें बसावें ताकि संसारके संकट हमारे दूर हों।

आप्त प्रभुकी मीमांसामें एक दार्शनिक ग्रन्थका निर्माण—पूज्य श्री मत्समन्तभद्राचार्यने "मेरे द्वारा नमन स्तवनके योग्य कौन है" इसकी परीक्षामें आप्तमीमांसाकी रचना की है। इस मीमांसामें प्राय सभी दार्शनिक सिद्धान्तोंका वर्णन और निर्णय है। रचनाका दूसरा नाम देवागमस्तोत्र भी है, क्योंकि इस कृतिमें सर्वप्रथम देवागम शब्द आया है और इस मीमांसामें मीमांसा होनकी पद्धतिमें देवस्तवन भी मौलिक होता गया है। समन्तभद्राचार्यने सर्वप्रथम कहा कि—

देवागमनभोयानचामरादिविभूतयः।
मायाविष्वपि दृश्यन्ते नातस्त्वमसि नो महान् ॥

हे प्रभो ! तुम इस कारण हमारे महान् नहीं हो सकते कि तुम्हारे पास देवों का आगमन होता है,तुम्हारा आकाशमें बिहार होता है तुम्हारे ऊपर चामर छत्र आदि विभूतियाँ शोभित होती हैं, क्योंकि ये सब ठाठ तो मायावी पुरुषोंमें भी देखे जा सकते हैं। तब किसीकी ओरसे प्रश्न हुआ कि प्रभु इस कारण महान् हो सकते हैं कि उन का देह भीतर व बाहर अतिशयसहित हैं। इसपर उत्तर दिया है—अध्यात्मं वहिर-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

येष विग्रहादि महोदय । दिव्यः सत्येः दिवौकस्स्वप्यस्ति रागादिमत्सुसः । देहादिकमहोदय तो दिव्य सत्य है, लेकिन इस प्रकारका देह तो रागादिमान देवोंमें भी होता है। तब प्रश्न किया गया कि प्रभुने तीर्थ (धर्म) चलाया है इससे वे महान् है । तो उत्तर मिला तीर्थकृत्समयानां च परस्परविरोधतः, सर्वेषामाप्तता नास्ति कश्चिदेव भवेद्‌गुरुः । तीर्थकृतः आगमोंमें तो परस्पर एक दूसरेसे विरोध है सो इस कारण सभी तो आप्त नहीं हो सकते ।

प्रभुकी महत्ताका कारण फिर समाधान किया गया कि प्रभु इस कारण महान हैं चूँकि दोष और आवरणकी हानि की अतिशायन (किसीमें कम दोष और किसीमें और कम) देखा जाता है तो कोई ऐसा भी हो जाता है जिसमें दोष और आवरण रहते ही नही हैं । दोष न रहनेसे वीतराग व आवरण न रहनेसे सर्वज्ञ हो जाते हैं । ऐसे प्रभो ! आप ही हो । आपमें दोष आवरण नहीं रहे, इस कारण आप बड़े हैं । कैसे समझा कि इसमें दोष और आवरण नहीं रहे ? कहते हैं कि आवरण नहीं रहे इस कारण तो आप सर्वज्ञ हैं और दोष नहीं रहे इस कारण आप वीतराग हैं । और, जो वीतराग हुए, सर्वज्ञ हुए वे ही हमारे लिए पूज्य हैं । तो हे समन्तभद्र ! तुमने कैसे पहिचाना कि गुणोंमें वीतरागता और सर्वज्ञता है ? तो समन्तभद्राचार्य ने वह उत्तर दिया जिसमें दार्शनिक ग्रन्थकी रचना हुई ? हे प्रभो ! आप निर्दोष हो, वीतराग हो, क्योंकि आपके वचन पूर्वापर विरोधसे रहित हैं, निर्दोष हैं । जैसे जिसको बुखार आता है जुखाम होता है तो उसके वचन बढ़िया नहीं दिकलते, स्पष्ट वाणी नहीं निकलती और जब स्पष्ट बोलना होता है तो लोग कहते हैं कि अब इसका बुखार उतर गया है, जुखाम नहीं रहा । बोलीसे आप जान जाते हैं कि अब रोग नहीं रहा । इसी प्रकार हे प्रभु ! आपके ऐसे वचन हैं कि जिन वचनोंसे यह परख हो जाती है कि आपमें रागादिक दोष व ज्ञानावरणादिक नहीं रहे ।

प्रभुकी निर्दोषताके समर्थक वचनोंका तथ्य बतानेमें दर्शनशास्त्रका निर्माण और प्रभुस्तवन - प्रभुमें अब कोई दोष नहीं रहा । सो कैसे ? उन वचनों का व्योरा देनेके ही रूपमें सब दर्शनोंका मंतव्य रख दिया गया है । कोई लोग यों मानते हैं पर आपका मंतव्य यह है जैसे कोई मानता है कि आत्मा नित्य है और नित्य एकत्व माननेपर फिर इसमें कोई काम ही नहीं हो सकता अर्थक्रिया नहीं बन सकती, विकार नहीं आ सकता । अतः नित्य एकान्त ठीक नहीं बैठता फिर मोक्षका उद्यम क्यों ? कोई कहते हैं कि आत्मा क्षण क्षणमें नष्ट होता है सो अनित्य है तो अनित्य एकान्ततामें भी न कर्म बँधना, न कर्म भोगना न कोई बँध मोक्षव्यवस्था नहीं रह सकती जो कि प्रतीतिविरुद्ध है । अतएव यह भी युक्त नहीं है,पर आत्मा द्रव्यदृष्टिसे नित्य,पर्याय दृष्टिसे अनित्य है । इस प्रकारसे दर्शन सिद्धान्तोंको रखना और स्याद्वादकी शैली से उत्तर देना यह प्रभुकी स्तुति है । तो प्रभुकी स्तुति करनेमें ही समस्त दर्शनोंको

http://sahjanandvarnishastra.org/

रख दिया और उनकी समस्या भी हल कर दी ऐसे दिग्गज विद्वान समन्तभद्राचार्य थे।

समन्तभद्रकी दार्शनिक भारतीपर अकलङ्क देव व विद्यानन्दि स्वामी की व्याख्यायें—समन्तभद्राचार्यके वचनोंपर अकलङ्कदेवको इतनी रुचि थी समन्तभद्र स्वामीके प्रति अकलङ्कदेवके इतनी भक्ति थी कि उन्होंने समन्तभद्रके वचनोंकी बड़ी युक्ति और रुचिके साथ टीका की। अकलङ्कदेवके वचन किस प्रकारके विद्वत्तापूर्ण हैं कि उनको बड़े ऊँचे विद्वान ही आसानीसे समझ सकते हैं। और देखिये समन्तभद्राचार्यके मूल श्लोकोंपर अकलङ्कदेवने टीका की और उसपर विद्यानन्द स्वामीने इसतरह टीका की अपनी टीका कुछ कर लेनेके बाद फिर अकलङ्कदेवने एक वचन जोड़ दिया। फिर कुछ अपनी बात कहनेके बाद उससे लगा हुआ दूसरा वाक्य जोड़ दिया। ऐसी टीका करना बड़ा कठिन होता है। कोई शुरूसे लिखता जाय वह सरल है किन्तु जैसे वृत्तिके १०० वाक्य हैं और हम इस तरहसे बोलें या लिखें कि २५ वाक्य बोलकर एक वाक्य रखदें फिर अपनी बात बोलकर २५–५० वाक्योंके बादका दूसरा वाक्य उसीमें जोड़दें और सुनने व ले पढ़ने वाले उस समस्त निबंधको एक रस सा पढ़ते रहें ऐसी टीका करना कितना कठिन हैं, ऐसी विद्यानन्द स्वामीने टीका की। ये भी बड़े दार्शनिक विद्वान थे।

विद्यानन्दि स्वामीका स्याद्वादशासनकी ओर लगावका प्रारम्भ—विद्यानन्दि जी जैन धर्मके अनुयायी न थे बल्कि जैन धर्मसे इतना द्वेष रखते थे कि राजसभासे लौटकर घर आयें तो रास्तेमें एक पार्श्वनाथ चैत्यालय पड़ता था उससे मुँह फेरकर वहाँसे निकला करते थे। जब बहुत दिन हो चुके तो एक दिन उनके चित्तमें ऐसा कौतूहल उपजा कि हम जिससे मुँह फेरकर चला करते हैं देखें तो सही कि वहां है क्या? तो वे चैत्यालयके अन्दर गए और वहाँ देखा तो साधारणतया देख लिया जैसे कोई दार्शनिक लोग देख लेते हैं। पश्चात् उस चैत्यालयमें एक साधु बैठे थे जो देवागम स्तोत्रका पाठ कर रहे थे। संस्कृतके बड़े ऊँचे विद्वान तो थे ही विद्यानन्दस्वामी और दर्शन शास्त्रके उस समयके एक मात्र प्रसिद्ध विद्वान थे। राजसभामें उनका मुख्य स्थान था, आखिर वे थोड़ा उस साधुके निकट बैठकर सुनने लगे। उन्हें बड़ा रुचिकर लगा, जो तत्त्वकी बात हो, यथार्थ बात हो उसे सुनकर क्या विद्वान पुरुष उसमें रुचि न करेगा? सुनते रहे। जब देवागम स्तोत्र समाप्त हो गया तो विद्यानन्द स्वामी बोले महाराज! इसका कुछ तात्पर्य बताओ, अर्थ बताओ। वह साधु विद्वान न था। जैसे कुछ याद कर लिया, पाठ कर लिया, तो श्रद्धावश पाठ किया करते थे। तो साधुने कहा कि हम विद्वान नहीं हैं, विशेष समझते नहीं हैं। इतनी बात सुनकर उनकी सरलता निरखकर उनपर और असर पहुँचा कि धन्य हैं इस धर्मके मानने वाले साधुजनोंको कि जिनके हृदयमें कपट नहीं, जिनका हृदय ऐसा सत्य है और प्रभाव पहुंचा, देखिये! प्रभाव डालने वाली बात होती है शान्ति, सन्तोष, निष्कपटता; ऐसा जो गुण है वह प्राभाविक होता है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

साथ ही विद्वान हो तो उसका प्रभाव और बढ़ जाता है। तब विद्यानन्द स्वामीने कहा महाराज ! एक बार फिरसे सुना दीजिए शुरूसे अन्त तक यह देवागम-स्तोत्र। तो उन्होंने फिरसे सुनाया और वे बड़े ध्यानसे सुनते गए, क्योंकि अब उन का चित्त बदल रहा था। उस देवागमस्तोत्रके सुनते ही ज्ञाननेत्र खुल गए और जो जो कुछ विद्याएँ उन्होंने पढ़ी थीं उन सबका सही अर्थ उनके चित्तमें घूमने लगा। अब दिल बदल गया। वहाँ फिर अन्तरङ्गसे नमस्कार करके धन्यवाद मानकर घर चले आये।

सम्यक् शासनकी भावना अब विद्यानन्दि दार्शनिक सत्य सम्यग्ज्ञानकी भावना करने लगे और इसी धर्मचिन्तनमें उनकी रात्रि गुजरी। कुछ थोड़े समयको निद्रा आयी। निद्रासे पहिले सब कुछ निर्णय करनेके बाद एक शङ्कामें उनका चित्त घूमता रहा है। अनुमान एक प्रमाण होता है और अनुमानको सिद्ध करने वाला हेतु हुआ करता है जैसे यहाँ अग्नि होना चाहिए क्योंकि धुवां हो रहा है। तो धुवां एक साधन है और साधनका साध्यके साथ सम्बन्ध जो बनता है, अनुमान जो बनता है उसमें कई चीजें आती हैं जैसे इस पर्वतमें एक अंश, अग्नि होगी दूसरा अंश, ये दोनों एक है सो इस पर्वतमें अग्नि है इसका नाम कहलाता है प्रतिज्ञा क्योंकि धुवां होनेसे यह अंश हुआ हेतु। जहां जहां धुवाँ होता है वहाँ वहां अग्नि होती है। जहाँ अग्नि नहीं होती वहां धुवां नहीं होता; जेसे तालाब, रसोईघर, ये दोनों दृष्टान्त आ गए; यह कहलाया उदाहरण। और यहां धुवां है उपनय, अतएव अग्नि होना चाहिए यह हुआ निगमन। ५ बातें होती हैं तब अनुमान बनता है पर विद्वत्जनोंकी सभामें केवल तीन जरूरी हैं प्रतिज्ञा, हेतु और उदाहरण। अब इन बातोंकी सोचते सोचते सो तो गए पर चित्तमें शङ्का रही कि अनुमानके अङ्ग कितने होते हैं। तो निद्रामें ही स्वप्न आया कि तुम्हारी शङ्काका समाधान उस ही चैत्यालयमें पार्श्वनाथकी मूर्ति के निकट लिखा मिलेगा। सुबह फिर दर्शन करने गये तो वहाँ दो श्लोक लिखे मिले—

अन्यथानुपपन्नत्वं यत्र तत्र त्रयेण किम्।
नान्यथानुपपन्नत्वं यत्र तत्र त्रयेण किम् ।१।
अन्यथानुपपन्नत्वं यत्र किं तत्र पञ्चभिः।
नान्यथानुपपन्नत्वं यत्र किं तत्र पञ्चभिः ॥२॥

इन श्लोकोंका तात्पर्य यह है कि अनुमानको सिद्ध करने वाला केवल एक ही उपाय है – अन्यथानुपपन्नत्व। साध्यके बिना साधन न हो तो बस अनुमान लगा दीजियेगा। जैसे अग्निके बिना धुवां नहीं होता तो धुवां निरखकर अग्नि जान ली जाती है। ऐसे ही सब हैं। तो जहां अन्यथानुत्पत्ति हो वहां तीनसे क्या मतलब ? और जहां अन्यथानुत्पत्ति नहीं है वहाँ तीन क्या करेंगे ? जहां अन्यथानुत्पत्ति है वहाँ ५ से क्या प्रयोजन ? जहां अन्यथानुपपत्ति नहीं वहां ५ क्या करेंगे। अर्थात् अनुमानको सिद्ध करनेमें समर्थ केवल अन्यथानुत्पत्ति है। पढ़कर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई।

http://sahjanandvarnishastra.org/

स्याद्वादशासनकी श्रद्धाका सत्परिणाम अब तो विद्यानन्दि विद्वानको स्याद्वाद शासनपर इतनी दृढ़ श्रद्धा हुई कि वे अध्यात्म रङ्गमें भी रङ्ग गए। दूसरे दिन जब राज सभामें पहुंचे तो विद्वान जनोंके व्याख्यान प्रतिदिन हुआ ही करते थे। आज जब विद्यानन्द स्वामी भाषण करनेको तैयार हुए तो इस शैलीसे बोले कि स्याद्वादके सिवाय अन्य सब वादोंका निवारण हो जाय। उनके ५०० शिष्य विद्वान थे राजसभा में। पहिले समयमें प्रजामें राजामें विद्वान पुरुषोंका अतीव आदर था। वे धनको कुछ नहीं समझते थे। विद्याका ही महत्त्व दिया करते थे। ५०० शिष्य सुनकर अचम्भा करने लगे कि आज मेरे गुरु क्या कह रहे हैं। किसीने बीचमें ही आशङ्का की तो उन्होंने खुले शब्दोमें कहा कि हम जो कहते हैं वह यथार्थ सत्य कह रहे हैं। जिस किसीको भी शङ्का हो तो कहा कि हम उसका समाधान देंगे। बहुत देर तक बड़े जमघटसे कोई अपूर्व सभा हुई और अन्तमें फिर उस सभासे उठनेके बाद फिर न घर रहे और न सभामें आये। सीधे वनमें जाकर मुनि दीक्षा ले ली और उन विद्यानन्द स्वामीने जो टीकायें की हैं—तत्त्वार्थ श्लोक वार्तिक अथवा अष्ट सहस्त्री, बड़े ऊँचे-ऊँचे दार्शनिक विद्वान भी उस रहस्यको समझनेमें व्यग्र हो जायें। जैसे कि कुछ प्रसङ्गमें प्रमेय कमल मार्तण्डके दार्शनिक चर्चामें आपने सुनी ऐसे ही पहिले उनका अजैन दर्शनोंसे या अन्य दर्शनोंसे परिचय था तो ऐसे अभ्यस्त योगी जब स्याद्वाद शैली से वर्णन करे तो उस शैलीमें और भी चमत्कार बन जाते हैं। तो यों दर्शन शास्त्रकी परम्परा यहां अब तक चली आयी है और उसमें इन विद्वानोंका प्रमुख हाथ रहा समन्तभद्र, अकलङ्कदेव और विद्यानन्दस्वामी। समन्त भद्राचार्यकी तरह मूल सूत्रकार माणिक्यनन्दि आचार्य हुए जिन्होंने यह परीक्षामुखसूत्र बनाया।

सूर्यातिशायि ज्ञानज्योतिका प्रकाशन – अब तक इस परिच्छेदमें यह सिद्ध किया गया है कि प्रमाणका लक्षण यह है कि कि जो ज्ञान अपना और अपूर्व अर्थका निश्चय कराये सो ज्ञान ही प्रमाण है। सीधा अर्थ यह समझिये कि ज्ञान प्रमाण है। ज्ञानका ही नाम प्रमाण है क्योंकि ज्ञानकी प्राप्ति करामेंमें और अहितका परिहार करानेमें समर्थ है। हम हितकी बातमें लग जायें और अहितकी बातको छोड़ दें इसके लिए किसी बड़े योगीकी पूजा करें, हाथ जोड़ें, दूसरोंका सहारा तकें तो ये सब भले ही एक अङ्ग बनेंगे किन्तु किसीमें यह सामर्थ्य नहीं है कि दूसरेको हितमें लगा दें और अहितसे छुड़ा दें। सूर्यका प्रकाश दूसरोंको मार्ग दिखा देता है। उजेला कर दिया, सबेरा हो गया, यहाँ तक तो ठीक रहा किन्तु वह किसीको किसी अच्छे काममें लगादे और खोटे कामसे हटादे, यह सामर्थ्य सूर्यमें तो नहीं है। उजेला कर दिया, मार्गदर्शन हो गया, अब कहाँ जाना है, कहाँसे हटना है, इसको तो वही पुरुष करेगा, सूर्य न करा देगा। किन्तु ज्ञान चेतन है, अतः सूर्यातिशायि तत्त्व है। अपने ज्ञान हीमें यह भी सामर्थ्य है कि वह मार्गदर्शन करा दे और हितके कार्यमें लगादे, अहितके कार्यसे छुटा दे। ज्ञानज्योति ऐसी अपूर्व ज्योति है जो सूर्यकी ज्योतिसे भी निराली है। यह ज्ञान-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ज्योति नित्य उदित है, देखने वाले देख लें अथवा जो न देख सकते हों वे न देखें, पर कोई जाने या न जाने इसमें ज्ञानज्योतिके सद्भाव अभावकी विशेषताएँ नहीं होतीं।

परमशरण ज्ञानज्योतिकी शाश्वतिकता—ज्ञानज्योति सदा विराजमान है यह सदा जीवोंको आह्वान करती है—ऐ प्राणियो ! मेरी ओर देख लो, हम अनादि कालसे तुम्हारे हितके लिए सदैव उद्यत रहते हैं, अन्तरङ्गमें, पर तुम ही हमको नहीं निरखते तो फिर हमारा वश नहीं चलता। तुम एक बार भी मेरी ओर निगाह कर लो तब मेरा सब वश चल जायगा। तुम्हारी रक्षा करनेमें तुम्हारे मल, कलङ्क, सङ्कट हटानेमें फिर हमारा सारा वश ही वश चलता रहेगा। यह ज्ञान मानो इस प्रकारकी तैयारीसे प्रत्येक प्राणियोंमें उपस्थित है। हम आप सब जीव सदैव परेशानीका अनुभव कर रहे हैं, कोई किसी प्रकार, कोई किसी प्रकार। कोई न कोई परपदार्थ संबंधी बात चित्तमें बसाये रहते हैं और अपनेको परेशान रखते हैं। क्यों सङ्कट सहते हो, तथा समझलो, एक अपने आत्मस्वरूपकी इस सहज ज्ञानज्योतिकी ओर दृष्टि रखनेसे सारे सङ्कट समाप्त हो जाते हैं।

बाह्य वैभवोंकी असारता—जगतमें जितने भी बाह्य वैभव हैं वे सब हैं क्या ? असार हैं, अहित हैं, भिन्न हैं, पररूप हैं और विनाशीक हैं। यों इन पर पदार्थोंकी वजहसे मेरेमें कोई तरक्की नहीं होती है। मेरा विकास नहीं होता। मेरे को शान्ति नहीं मिलती। अतएव मेरे लिए समस्त परपदार्थ असार हैं। जैसे इस लोक में जिसका जिससे कोई काम नहीं बनता है तो वह सोचता है कि मेरे लिए यह असार है। किसी काममें आ ही नहीं सकता। तो ज्ञानी समस्त परपदार्थोंके प्रति यह निरखा करता है कि मेरे लिए तो सब असार है। किन्हीं भी बाह्य पदार्थोंसे मेरा निर्माण नहीं हो सकता। मैं हूँ ज्ञानानन्दस्वरूप, जिससे निर्माण यह होता है कि यह केवल ज्ञानवृत्तिसे रहा करे, क्षोभरहित रहा करे। तो एक ज्ञानवृत्तिसे रहना और क्षोभरहित रहना यह कार्य किसी परपदार्थके द्वारा नहीं बनता है। किसी भी परपदार्थमें यह सामर्थ्य नहीं है कि उसे ज्ञानरूप बनाये रखे और आनन्दरूप बनाये रखे। परपदार्थों का सम्बन्ध, परपदार्थोंकी ओर हमारी वृत्तिका मुड़ना यह सब केवल क्षोभका ही कारण बनता है। अतएव समस्त बाह्य पदार्थ मेरे लिए असारभूत और भिन्न हैं।

आत्मस्वरूपको छोड़कर परभावोंमें परपदार्थोंमें उपयुक्त होनेकी महती विपदा—मेरा द्रव्य मैं ही हूँ ये परद्रव्य हैं, मेरे प्रदेश मुझमें हैं। इन सबका क्षेत्र मुझसे अलग है। मेरी परिणति मुझमें हैं। इन समस्त परपदार्थोंकी परिणति उन परपदार्थोंमें है। मेरा भाव मेरा गुण, मेरा स्वरूप मुझमें है। इन परपदार्थोंका गुण स्वभाव स्वरूप उन हीमें हैं। यों ये समस्त वैभव अत्यन्त भिन्न हैं और फिर पर हैं। मैं मैं हूं, मुझमें इन सब वैभवोंका अत्यन्त अभाव है और फिर विनाशीक है। कदाचित इनका काकतालीय न्यायवश कुछ सम्बन्ध भी बन जाय, सम्मुख भी आ जायें

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

लेकिन ये सब विनाशीक हैं। नष्ट हो जाने वाले हैं। ऐसे बाह्य पदार्थोंमें इन वैभवोंमें अपने चित्तको रमाना यह तो एक बड़ी विपदा है, विडम्बना है। यह कोई संतोषके लायक बात नहीं है। यह वैभव यदि संतोषके योग्य होता, सारभूत होता तो बड़े बड़े तीर्थङ्कर चक्रवर्ती जैसे महापुरुष इन समस्त वैभवोंका त्याग करके क्यों जाते ? ये समस्त वैभव असार हैं, भिन्न है, पर हैं, अहितरूप हैं। हितमें काम आने वाले नहीं हैं और फिर क्षणभंगुर हैं, ऐसे अत्यन्त भिन्न असारभूत बाह्य पदार्थोंमें प्रीति करना, अब सोच लीजिए कि यह हम आपपर कितनी बड़ी विपत्ति छायी है। हम किन्हीं भी बातोंमें विपदा मान लें लेकिन विपदा यह छायी है कि हम पर पदार्थोंमें ममता किए हैं, उन्हें पकड़े हैं, उनमें चित्त रमाये हैं, उनकी ओर आकर्षण करते हैं और आखिर ये किसी दिन छूट जायेंगे ऐसे इन बाह्य पदार्थोंमें प्रीति करना बहुत कठिन विपदाकारी है। हम इस विपदाके परिहारका प्रयत्न करें।

अज्ञानविपदापरिहारके लिये उद्बोधन करने वाले योगिजनोंका आभार

अज्ञानविपत्तिके परिहारके लिए जिन आचार्यदेवोंने प्रयत्न किया है उन उनके उपकार को कहाँ तक भूल सकते हैं। जो ऋषोजनोंने, संतजनोंने, साधु पुरुषोंने हमारा उपकार किया है वे एक वास्तविक उपकारी हैं। उनका विशुद्ध उपकार है। बाकी लौकिक उपकार तो एक धोखे वाले उपकार हैं, बल्कि कोई कोई उपकार तो इन मनुष्योंको जीवनभर परेशानीमें डाले जाने वाले उपकार हैं। और, यह ज्ञानदृष्टि आदिक रूप उपकार यह संतजनोंका बहुत महान उपकार है। इसी कारण प्रभाचन्द्राचार्य इस परिच्छेदको समाप्त करते हुए अन्तमें उन तीन दार्शनिकोंका स्मरण कर रहे हैं जो प्रभाचन्द्राचार्यकी इस कृतिमें, इस पद्धतिमें जिनकी रचना बहुत सहयोग देने वाली हुई हैं उन मुनित्रयको नमस्कार करते हुए जिन शासनकी भावनारूप आशीर्वाद लोगों को दे रहे हैं प्रभाचन्द्राचार्य। इस परिच्छेदमें प्रमाणका स्वरूप, प्रमाणके लक्षणमें कहे गये विशेषणोंका विवरण, प्रमाणकी मुद्रा और प्रमाणके प्रामाण्यकी उपपत्तिका वर्णन हुआ।

॥ परीक्षामुखसूत्रप्रवचन प्रथम परिच्छेद समाप्त ॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com